❑ मूल्य : 5.00
❑ अंक : 07
❑ 16-30 नवंबर, 2013
❑ वर्ष : 37

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

उपवास केवल सत्य की प्रतिष्ठा हेतु

"उपवास उसी के द्वारा किया जा सकता है जो प्रतिपक्षी के साथ सम्बद्ध हो। और जिस काम या प्रश्न के लिए वह उपवास कर रहा हो, उससे भी वह सीधा जुड़ा होना चाहिए।"

"उपवास एक आध्यात्मिक उपाय है। अतएव उसमें सौदेबाजी को कोई स्थान नहीं। सत्याग्रह में जो अल्पतम है वही महत्तम है। इसलिए गुस्सा, हठ या गर्व के कारण कम-से-कम शर्तों के पूरे होने पर भी उसे जारी रखना उतना ही नुकसान देह है, जितना कमजोरी, अनिश्चत या लापरवाही के कारण उसे बीच से छोड़ देना है।"

"बगैर श्रद्धा के उपवास के घातक परिणाम आ सकते हैं। सत्याग्रही को सत्य और अहिंसा के अलावा इस बात पर भी विश्वास होना चाहिए कि भगवान उसे आवश्यक शक्ति देगा और यदि उसमें तनिक भी अशुद्धि होगी तो वह उसे तुरन्त छोड़ने में झिझकेगा नहीं।"

"उपवास सत्याग्रह का अंतरंग हिस्सा है। सत्य की भक्तिपूर्वक खोज में से वह अनिवार्यतः निकलता है और वह केवल सत्य की प्रतिष्ठा हेतु किया जा सकता है। अपने सत्य को दूसरे के गले उतारने के लिए नहीं। सत्याग्रही परीक्षा के लिए हमेशा अपनी बाजी खुली रखेगा और मरते दम भी अपनी बात में कोई गलती मिले या दिखायी जाय तो अपने कदम वापस लेने के लिए उसे सदा तैयार एवं तत्पर रहना चाहिए।"

(नारायण देसाई द्वारा 'महात्मा-द लास्ट फेज' से उद्धृत)

–महात्मा गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
वर्ष : 37, अंक : 07
16-30 नवंबर, 2013
सर्व सेवा संघ
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक
बिमल कुमार
मो. 9235772595
प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये
शुल्क
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in
Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. दो कविताएं... 2
2. कार्यकर्ता निर्माण की... 3
3. जीवन में शांति का... 4
4. यह सतत संपूर्ण क्रांति... 6
5. शोध से ज्यादा श्रद्धा... 8
6. आजाद भारत के गुलाम... 9
7. भ्रष्टाचार के मकड़जाल... 10
8. विदेशी पूंजी का महाभूत... 11
9. 'गुजरात मॉडल' के... 12
10. भोजन, कुपोषण और... 13
11. अर्थव्यवस्था पर छाया... 14
12. मृत्युदंड : क्या सभ्य... 15
13. स्वराज्य विद्यापीठ... 17
14. लोक स्वराज्य-जनजागरण... 19
15. कोमलता से ही बचेगी... 20

दो कविताएं

तू भी पंछी उड़ता जा

–शक्ति कुमार

अल्लाह अल्लाह करता जा
हर बस्ती से गुजरता जा
आते-जाते रहते मौसम
बनती-उड़ती रहती शबनम
तू भी पंछी उड़ता जा
हर बस्ती से गुजरता जा।

कौन है पापी कौन नहीं
ये तो एक खुदा जाने
बंदे तेरी हस्ती क्या
क्या हैं तेरे पैमाने
तू बस खुद से डरता जा।

क्यूँ उलझा है अपने ही
ख्वाबों और खयालों में
अक्सर लोग फँसे देखे
खुद के फैंके जालों में
पल पल जीता मरता जा।

हर कतरे में दरिया है
लेकिन बिखरा-बिखरा है
जब तक कतरा मिटे नहीं
तब तक कतरा कतरा है
दरिया बन के बढ़ता जा।
हर बस्ती से गुजरता जा।

जल-जंगल और जमीन

–प्रो. बसंता

जल, जंगल और जमीन।
मानव-जीवन-धन ये तीन।।
इनका संरक्षण है धर्म।
इनका पोषण ही सत्कर्म।।

इन्हीं से है मानव-अस्तित्व।
सबका हो इनपर स्वामित्व।।
संवर्धन सबका दायित्व।
इन्हीं से है जीवन का सत्व।।

अन्यायपूर्ण दोहन हो बंद।
ज्यादा न बने हम अकलमंद।।
प्रकृति से मिलकर ही रहना है।
शोषण कभी नहीं करना है।।

शोषण किये तो पछतायेंगे।
भौतिक विकास सब ढह जायेंगे।।

जल तो जीवन का पर्याय।
जंगल तो पानी बरसाय।।

सब जीवों की माता धरती।
सदा प्रेम से पोषण करती।।
बदले में कुछ कभी न लेती।
खनिज सम्पदा देती रहती।।

इससे कभी उऋण न होंगे।
संरक्षण कर सुदृढ़ ही होंगे।।
रत्नगर्भा स्वयं कहलाती।
अक्षय, अनंत है इसकी थाती।।

इनका पूजन, अर्चन करना।
बहुत ही पछताओगे, वरना।।
जल, जंगल और जमीन।
इनका तू अस्तित्व न छीन।।

संपादकीय

कार्यकर्ता निर्माण की चुनौतियां

पिछले दो-तीन वर्षों में जनता के स्वतः स्फूर्त आंदोलन भी खड़े हुए तथा ऐसे लोकतांत्रिक आंदोलन भी खड़े हुए, जिनमें जनता की अभूतपूर्व भागीदारी थी। लेकिन सामान्यतया ये आंदोलन एक या दो मुद्दों पर केन्द्रित थे। इन मुद्दों को उनके तार्किक परिणति तक ले जाने के लिए समाज के तमाम अन्य क्षेत्रों में भी परिवर्तन लाने के लिए आंदोलन को व्यापक बनाने की जरूरत है, यह बात ज्यादा उभर कर नहीं आयी। इसका एक कारण तो यह था कि ये आंदोलन, उस व्यवस्था को बदलना होगा, जिस कारण ये समस्याएं हैं, इस सोच की ओर नहीं बढ़ सके। दूसरे, प्रचार करने वाले लोगों के मन में व्यवस्था के प्रति उतनी शिकायत नहीं थी, जितनी व्यवस्था चलाने वालों की नीयत के प्रति थी। इस कारण कार्यकर्ता निर्माण की दिशा में प्रगति नहीं हो पायी।

सन् 60 एवं 70 के दशक तक जन-आंदोलन संपूर्ण परिवर्तन की बात करते थे। लेकिन साथ ही यह भी सच है कि उस दौर में राजनीतिक पार्टियां भी विचारों के आधार पर व्यापक परिवर्तन की बात करती थीं। आज राजनीतिक पार्टियां भी विचार केन्द्रित न होकर सत्ता केन्द्रित तथा नारे पर केन्द्रित होकर रह गयी हैं। पार्टी नेतृत्व एक कारपोरेट घराने की तरह काम करता है तथा पार्टी एक चुनावी मशीन की तरह काम करती है। जिस प्रकार सामान बेचने वाली कंपनियां अपने ब्राण्ड का प्रचार करती हैं, उसी प्रकार पार्टी अपने प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री के दावेदार व्यक्ति का प्रचार करती हैं।

इस कारण अब पार्टियां न तो अपने कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण करती हैं, और न ही जनता का शिक्षण करती हैं। परिणामस्वरूप, राजनीतिक पार्टियों में विचारधारा के आधार पर कार्यकर्ता निर्माण का काम रुक गया है। किसी भी अभियान में एक या दो मुद्दों पर या किसी एक व्यक्ति के इर्द-गिर्द पार्टी कार्यकर्ताओं को खड़ा किया जाता है।

आंदोलनकारी शक्तियों को हर हाल में ऐसी परिस्थितियों से अपने को दूर रखना होगा। और, अगर आंदोलन के अंदर ऐसी प्रवृत्ति उभरती दिखाई दे, तो सामूहिक प्रयत्न से उसका निषेध करना होगा। ब्राण्ड विज्ञापन करना एक बात है तथा मानवीय मूल्यों की आधारशिला रखना, उन्हें विकसित करना, उनके आधार पर संरचनाओं का निर्माण करना, ये दूसरी बात हैं। मानवीय मूल्यों की आधारशिला रखने के लिए आंदोलन के नेतृत्व तथा आंदोलन के कार्यकर्ता दोनों को उन जीवन मूल्यों को आत्मसात् करना होगा तथा उनके अनुरूप जीना होगा। यही वह प्रस्थान बिन्दु है जहां से आंदोलन के कार्यकर्ता निर्माण की प्रक्रिया भिन्न होगी तथा पार्टियों के कार्यकर्ता निर्माण की दिशा भिन्न होगी।

अगर इस बात को हम लोकसत्ता निर्माण के संदर्भ में देखें तो दोनों की भूमिका का अंतर और अधिक स्पष्ट हो जायेगा। पार्टी के कार्यकर्ता जब किसी मुद्दे पर आंदोलन करते हैं तो वे उस आंदोलन से निकली हुई शक्ति से अपनी पार्टी को मजबूत करते हैं तथा उस शक्ति को राजसत्ता में जाने का माध्यम बनाते हैं। राजसत्ता एवं पार्टी दोनों एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था हैं, अतः पार्टी कार्यकर्ता की भूमिका सदैव केन्द्रमुखी श्रेणीबद्धता को मजबूत करने की होती है। उनका आंदोलन भी इसी हेतु से होता है।

दूसरी ओर लोकसत्ता के निर्माण के काम से जुड़े कार्यकर्ता जब किसी लोक-आंदोलन का हिस्सा होते हैं तो वे उस आंदोलन से उभर कर आयी लोकशक्ति को, स्थायी लोकसत्ता के निर्माण की दिशा में परावर्तित कर देते हैं। इसी कारण लोक-आंदोलनों के गर्भ से लोकसत्ता के निर्माण तथा वैकल्पिक रचना के निर्माण की संभावना प्रकट होती रहती है।

लोकसत्ता का निर्माण तथा वैकल्पिक रचना के निर्माण के लक्ष्य के कारण ही, लोक आंदोलन व्यापक से व्यापकतर होता जाता है तथा व्यवस्था-परिवर्तन का माध्यम बनता जाता है।

अपनी इसी क्षमता के कारण लोक-आंदोलन न केवल कार्यकर्ता का निर्माण करता जाता है, बल्कि ऐसे कार्यकर्ता का निर्माण करता जाता है जो संकीर्ण चेतना से ऊपर उठ, स्वतंत्र व व्यापक चेतना के प्रतिनिधि बन जाते हैं। जाति, धर्म, क्षेत्रीयता, लिंग-भेद आदि संकीर्ण चेतनाओं का वे प्रतिनिधित्व नहीं करते। बल्कि समता, न्याय, श्रम-निष्ठा, सत्य, अहिंसा एवं अन्य मानवीय मूल्यों का वे प्रतिनिधित्व करने लगते हैं।

इसी कारण लोक आंदोलनों के नेतृत्व को इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा कि अन्याय का विरोध एवं व्यवस्था-परिवर्तन की लड़ाई के दौरान, उसकी भट्ठी से तप कर ऐसे कार्यकर्ता निर्माण का कार्य भी होता रहे, जो नये मनुष्य के निर्माण के प्रतीक के रूप में स्थापित होते जायें। गांधीजी ने इस कार्य को अत्यधिक महत्त्व दिया था। कार्यकर्ता निर्माण के इस पक्ष को भी जन-आंदोलन के केन्द्र में लाना होगा। बिमल कुमार

जीवन में शांति का महत्व

❑ मौलाना वहिदुद्दीन खान

विद्वतजन युद्ध का न होना शांति के रूप में परिभाषित करते हैं। यह नकारात्मक परिभाषा है। शांति की सकारात्मक परिभाषा है—''अवसरों की उपलब्धता/शांति से स्थितियां सामान्य होती हैं, अवसरों के द्वार खुलते हैं एवं न अवसरों का लाभ लेकर या सदुपयोग करके हम प्रत्येक प्रकार की सफलता प्राप्त कर सकते हैं। शांति के नक्शे पर भारत का बड़ा नाम है। यह भारत ही है जिसने महात्मा गांधी जैसे शांतिदूत/शांतिवादी को पैदा किया, जन्म दिया।

एनसाइकिलोपीडिया ब्रिटेनिका ने शांतिवाद पर एक नौ पृष्ठ का लेख प्रकाशित किया है। इस लेख में महात्मा गांधी के बारे में कहा गया है, ''महात्मा गांधी द्वारा एक बहुत बड़ा व्यापक, शक्तिशाली एवं ऐतिहासिक अहिंसात्मक आंदोलन चलाया/संगठित किया गया।''

महात्मा गांधी भारत की महानतम उपलब्धि थे एवं उनका महानतम संदेश था 'शांति'। महात्मा गांधी के आदेशों का अनुसरण करते हुए भारत शांत राष्ट्र के रूप में उभरा है। भारत में लगभग समस्त धर्मों के अनुयाई गांधीजी के आदर्शों के समर्थक हैं एवं शांति-सौहार्द से रहते हैं।

प्रश्न तो यह है कि सब कुछ ठीक होने पर भी अंतर रहता ही है। यह अंतर/भेद मानव जीवन का हिस्सा है। हमने देखा है कि कभी-कभी यह मतभेद विवाद का कारण बनता है एवं यह विवाद हिंसा का रूप ले लेता है। ऐसी स्थितियों से कैसे निपटा जाये यह अहम प्रश्न है। समाज में शांति की स्थापना बहुत TOLERANCE में निहित है।

सच तो यह है कि मतभेद मानवीय स्वभाव का अंग है। मानव-समाज से मतभेदों को अलग नहीं किया जा सकता। इसके लिए हमें मतभेद की कला का प्रबंधन सीखना होगा, न कि मतभेद को मिटाने की कोशिश करना। केवल यही मंत्र है—शांति स्थापित करना होगा कि अंतर/मतभेद/बुराई नहीं है। वरन् मतभेद वरदान है। मतभेद समाज के लिए स्वाभाविक वरदान है। सच तो यह है कि मतभेदों से चुनौतियां उपजती हैं, चुनौतियां एक ही शर्त है—मतभेदों को सहन करो एवं इसे एक अवसर मानो।

इस्लाम धर्मग्रंथों में शांति : 'इस्लाम' शब्द (अरबी Silm) से शांति की ध्वनि देता है, संकेत देता है। पैगम्बरी परम्परा के अनुसार शांति ही इस्लाम है' (बुखारी)/इसका आशय यह है कि शांति इस्लाम की पहली जरूरत है। ठीक इसी तरह पैगम्बर साहब ने कहा है, ''मुसलमान वही है जिसकी वाणी एवं हाथों से लोग सुरक्षित हों।'' कुरान में खुदा के गुणों/विशेषताओं में से एक है—"As Salam" जिसका अर्थ है—शांति एवं सुरक्षा। खुदा का आविर्भाव ही शांति है। सच तो यह है कि खुदा ही शांति है। कुरान में दिव्य मार्गदर्शन शांति की ओर अग्रसर करता है। ईश्वर/अल्ला ताला का इच्छित धर्म—'शांति का मार्ग है।' स्वर्ग जो ईश्वर के सच्चे भक्त का गन्तव्य है, को भी 'शांति का घर' कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि जन्नत के लोग एक-दूसरे के लिए शांति की कामना करते हैं। यह संकेत देते हुए कि जन्नत/स्वर्ग की सामाजिक संस्कृति शांति पर आधारित होगी।

कुरान प्रामाणिक तौर पर कहती है समन्वय/समरूपता सर्वोत्तम है। अब तक के परिणाम बताते हैं कि विवाद के मार्ग पर चलने से बेहतर है, शांति का मार्ग। प्रकृति के नियमानुसार भी खुदा का आदेश है कि सफलता सामंजस्य की राह पर ही मिलेगी न कि विवाद/विरोध या हिंसक कार्यवाही से।

जब कभी पैगम्बर/संत के समक्ष दोनों कार्यवाहियों में विकल्प था, तो उन्होंने सदैव शांति का मार्ग चुना। इसका अर्थ हुआ कि यदि शांति का विकल्प हो तो हमें हिंसक कार्यवाही में लिप्त नहीं होना चाहिए। कारण स्पष्ट है कि हिंसक कार्यवाही की तुलना में अहिंसक मार्ग बेहतर होता है। शांति या अहिंसा की निष्क्रियता समझने का भ्रम नहीं पालना चाहिए।

जब कभी दो व्यक्तियों या समुदायों में कोई समस्या आती है, समस्या को हल करने का एक तरीका है विवाद या हिंसा और दूसरा है ईमानदारी। ईमानदारी को अपनाया गया तो शांति का मार्ग/शांति के मार्ग पर चलने या शांति की नीति अपनाने के बहुत से तरीके हैं—समस्या की प्रकृति के अनुसार शांति का मार्ग खोजना होता है।

इस्लाम में अहिंसा का सक्रियतावाद/अहिंसा का मत : इस्लाम हमें अहिंसा सिखाता है। कुरान बताती है कि खुदा को अव्यवस्था पसन्द नहीं है। अव्यवस्था (Disorder) को स्पष्ट रूप से समझाया गया है। कुरान के अनुसार अव्यवस्था से तात्पर्य है वह कार्य जिससे सामाजिक व्यवस्था बाधित हो एवं जिसकी वजह से जान-माल की क्षति हो।

हम दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि खुदा निश्चित रूप से अहिंसा को प्यार करता है। वह नहीं चाहता कि लोग मानव समाज में ऐसी हिंसा में लिप्त हों जिसका परिणाम मृत्यु एवं विनाश हो।

कुरान की मूल भावना उपर्युक्त अवधारणा से ओतप्रोत है। उदाहरण के लिए कुरान में धैर्य को अत्यधिक/सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। धैर्य ही इस्लाम की मुख्य कार्रवाई है, जिसका फल कल्पनातीत है। धैर्य, शांति का दूसरा पहलू है एवं अधीरता हिंसक कार्यवाही का दूसरा रूप है। आधुनिक युग में धीरज/

धैर्य ही अहिंसा है। धीरज से कार्यवाही को अंजाम देना ही अहिंसावाद है।

उपर्युक्त बिन्दु पर पैगम्बर मुहम्मद साहब के कथनों द्वारा स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है। इस्लाम के पैगम्बर साहब ने कहा है, ''खुदा जो अहिंसा को बख्शता/देता है वह हिंसा को नहीं।

अल्ला ताला/ईश्वर जो अहिंसक को प्रदान करता है, वह हिंसक को नहीं। यह सच्चाई है, यह प्रकृति का शाश्वत नियम है। प्रकृति के नियमानुसार भी हिंसा से जुड़ी हुई बुराई ही होती है। अहिंसा से अच्छी चीजों का जुड़ाव होता है। हिंसक कार्यों से समाज में घृणा का भाव पैदा होता है, जबकि शांति से प्यार पनपता है। हिंसा से विनाश तथा अहिंसा से रचना होती है। हिंसा से विद्वेष फैलता है एवं अहिंसा से मित्रता व प्यार। हिंसक तरीकों से नकारात्मकता उपजती है एवं अहिंसा से सकारात्मक मूल्य बढ़ते हैं।

गांधी-जयंती

2 अक्टूबर को गांधी जयंती विमुक्त, आदिवासी बालकों के छात्रावास एवं विमुक्त जाति के कल्याण के लिए समर्पित अभ्युदय आश्रम, मुरैना में मनायी गयी। बापू के चित्र पर सूतांजलि अर्पित कर सर्वधर्म प्रार्थना से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

वक्ताओं ने विचार प्रकट करते हुए कहा कि गांधीजी ने सत्य-अहिंसा के सिद्धांतों पर अडिग सत्याग्रह करते हुए अंग्रेजों को देश छोड़ने पर विवश किया। जिला सर्वोदय मंडल द्वारा आयोजित गांधी निबंध प्रतियोगिता में चयनित 6 छात्रों को गांधी साहित्य, शिक्षोपयोगी शब्दकोश पुरस्कार के रूप में प्रदान किये गये। फल वितरण के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

–मातादीन जोशी

हिंसक तरीकों से समस्याओं का जन्म होता है जबकि अहिंसा अवसर प्रदान करती है। संक्षेप में हिंसा मृत्यु है, अहिंसा जीवन है।

शत्रु क्षमतावान मित्र के रूप में : कुरान के अनुसार प्रत्येक मनुष्य में दो मानसिक वैशिष्ट्य होते हैं—अहम (Ego) एवं चेतना (Conscience) (अंतःकरण/विवेक)।

हिंसक तरीकों से लोगों का अहम जागता है, जिसका परिणाम विनाश होता है। अहिंसक कार्यों से विवेक जागृत होता है जिससे अंतरदर्शन होता है। इसके आशातीत सुखद परिणाम होते हैं। कुरान के शब्दों में आपका शत्रु अति प्रिय मित्र बन जाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि शत्रु-शत्रु नहीं है, बल्कि क्षमतावान मित्र है। शांति के तरीकों को अपनाकर ही हम क्षमतावान मित्र को वास्तविक मित्र बना सकते हैं।

अहिंसक तरीकों का एक सबसे बड़ा लाभ यह है कि समय बर्बाद नहीं होता। इस प्रकार उपलब्ध अवसरों का मौजूदा परिस्थितियों में सकारात्मक लाभ उठाया जा सकता है।

शांति एवं न्याय : विद्वानों ने शांति को परिभाषित किया है। ''युद्ध का न होना ही शांति है।'' यह परिभाषा बिलकुल ठीक है। वास्तव में शांति का मतलब उस स्थिति से है जिसमें हिंसा या युद्ध न हो।

तथापि कुछ लोग इस परिभाषा को अपर्याप्त मानते हैं। उनका मत है कि शांति के साथ न्याय भी होना चाहिए, ऐसी शांति जिसमें न्याय का अभाव हो, शांति नहीं कही जा सकती। लेकिन इस तरह की स्थिति को पैदा करना अव्यवहारिक भी है क्योंकि शांति स्वयं तो न्याय नहीं दे सकती। अतः न्याय शांति का आवश्यक तत्त्व नहीं है। शांति अवसरों के द्वार खोलती है। यह ऐसी अनुकूल स्थितियां पैदा करती है जिनमें हम न्याय तथा सकारात्मकता के लिए संघर्ष कर सकते हैं। शांति की तो हमेशा आवश्यकता रहती है। सभी अन्य चीजें शांति के बाद ही आती हैं न कि शांति के साथ।

केवल शांतिपूर्ण स्थिति में ही योजनाबद्ध कार्य सम्भव है। यही कारण है कि पैगम्बर मोहम्मद साहब ने हर स्थिति एवं हर कीमत पर शांति की वकालत की है। मोहम्मद साहब ने ए.डी. 628 में अपने विरोधियों के साथ संधि की, एक उदाहरण है। शांति-संधि के विवरण से स्पष्ट है कि इसमें न्याय से संबंधित कोई प्रावधान नहीं था। लेकिन पैगम्बर साहब ने इस संधि को न्याय के लिए नहीं बल्कि न्याय का मार्ग प्रशस्त करने के लिए स्वीकार किया। इसी कारण कुरान ने समन्वय को सर्वोत्तम कहा है।

शांति बम : शांति की नीति को शांति बम इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह बिना खून खराबे के शत्रु पर विजय प्राप्त कर लेता है। इतिहास गवाह है कि शांति बम हिंसा के बम से अधिक ताकतवर साबित हुआ है। शांति बम का अर्थ है जीवन एवं हिंसा बम का अर्थ है मृत्यु। शांति बम से रचनात्मक संसार एवं हिंसक बम से सकरा संसार बनता है। शांति बम प्रेम पर आधारित होता है जबकि हिंसक बम घृणा पर।

पैगम्बर की प्रार्थना : इस्लाम में शांति पर जोर दिया गया है। पैगम्बर साहब ने अल्ला ताला से हर रोज प्रार्थना करते थे। ''हे अल्ला तू शांति का स्रोत है, तुमसे ही शांति है और तुझमें ही शांति है। अतः हमें शांति की जिन्दगी बक्श दीजिये और हम जन्नत में जो कि शांति का घर है, प्रवेश करें। आप दया और मेहर के मालिक व भण्डार हैं, हम पर मेहर करिये। ❑

(23-25 अक्टूबर, 2013 को आगरा (उत्तर प्रदेश) में आहूत 45वें अ. भा. सर्वोदय समाज सम्मेलन में दिया गया उद्‌घाटन भाषण)

यह सतत संपूर्ण क्रांति है

❑ कुमार प्रशांत

चुनाव में बिहार संघर्ष का फैसला करने की इंदिराजी की चुनौती जयप्रकाश ने स्वीकार की, तो दलों को लगा कि अब बाजी उनके हाथ में है। उन्होंने कुछ हाथ-पांव मारे भी। लेकिन जयप्रकाश ने सावधानी से कदम उठाया और संघर्ष संचालन समिति की एक बैठक में कहा-''चुनाव को मैं आंदोलन की गंगा में बहती हुई लाश की तरह देखता हूं। लेकिन जब से मैंने चुनाव की बात की है, सब उसी दृष्टि से क्षेत्र बनाने में लगे हैं। आखिर, मैं किस पर भरोसा करूं? जनता के बीच जाता हूं तो वही उत्साह, वहीं उमंग देखता हूं लेकिन जब अपने हाथ-पांव देखता हूं, तो मेरी हालत उस मयूर की तरह हो जाती है, जो बादलों को देखता है, तो नाचने लगता है, लेकिन जब अपने काले, नंगे, कुरूप पैरों की ओर देखता है तो नाचना बंद कर देता है।'' जनवरी, 1975 को उन्होंने निर्दलीय शक्ति के हाथ में आंदोलन की पहल बनाए रखने के लिए फिर नई रणनीति बनाई और छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के नाम से निर्दलीय छात्रों-युवकों का संगठन खड़ा किया। जनता सरकार और संघर्ष वाहिनी का संगठन, इन दो कार्यक्रमों को आगे लाकर उन्होंने एक बार फिर निर्दलीय ताकत के हाथ में पहल सौंप दी।

लोकतंत्र में नए विचार और नई मान्यताओं को जमाने का इसके अलावा कोई रास्ता नहीं है कि जनांदोलनों में उनकी हिम्मत के साथ प्रयोग किया जाए। इसमें खतरा है-नए विचार का खोखलापन जाहिर हो सकता है या आपके नेतृत्व का मेरुदंड टूट सकता है, या विस्फोटक परिस्थिति आपके काबू से बाहर जा सकती है। लेकिन ऐसा न करने से क्रांतिकारी विचार और उभार का दब जाना या मर जाना निश्चित है। इसलिए क्रांतिकारी खतरे उठाकर भी प्रयोग करता है। गांधी ने इसी संदर्भ में ये दिशा-निर्देशक शब्द कहे थे ''कुशासन, शासन-हीनता-एनार्की से भी बुरी चीज है।''

जन संघर्ष में सामूहिक प्रार्थना के बोल की तरह समवेत, अटूट लय नहीं होती है, हो भी नहीं सकती। उसका सौंदर्य इसमें है कि वह समुद्र ही लहरों की तरह अविराम उठती है और यथास्थिति पर चोट करती है-लहरें जो हर बार रूप बदलती हैं और इसलिए हर बार नई होती हैं।

कुछ लोगों को ऐसा लगता है कि जयप्रकाश ने कुछ जल्दबाजी की और सीधे संघर्ष पर ज्यादा जोर दिया। इन दोनों बातों में तथ्य है। लेकिन उसके पीछे जयप्रकाश से कहीं ज्यादा हाथ परिस्थितियों का था। सिविल नाफरमानी के व्यापक आंदोलन के नेता को परिस्थिति का अपना मूल्यांकन करना पड़ता है और उसी मुताबिक रणनीति बनानी पड़ती है। देश में जिस अधिनायकवाद की चर्चा दूसरे लोग गोष्ठियों में करते थे, जयप्रकाश उसे तेजी से आते हुए देख रहे थे। वह जितनी तेजी से आ रही थी, जयप्रकाश उससे अधिक वेग से बढ़कर उसे रोकना चाहते थे। इस प्रकार उन्होंने दो चुनौतियां एक साथ स्वीकार की थीं—संसदीय लोकतंत्र का जो ढांचा देश में बना हुआ था, उसे टिकाए रखना और दूसरी तरफ, उस ढांचे में लोकतंत्र की वास्तविक आत्मा भरना। क्रांतिकारी आंदोलन का यह बिलकुल नया आयाम था जिसके लिए इतिहास के पास भी नसीहत नहीं है। एकदम कोरी स्लेट थी जिस पर जयप्रकाश को लिखना था। यह जिम्मेवारी स्वीकार करते हुए उनके समक्ष दो तथ्य एकदम स्पष्ट थे—वे अपनी जिंदगी के आखिरी दिनों में थे और गांधीजी की तरह उनके पास राष्ट्रीय पहचान रखने वाले नेताओं की टुकड़ी नहीं थी। उनके हाथ में थी 72 साल की अपनी पकी उम्र तथा युवकों के अलावा, थोड़े से सर्वोदय के वरिष्ठ साथी। इन दोनों में से किसी की भी राष्ट्रीय तो छोड़िए, प्रांतीय पहचान भी नहीं थी। इसलिए एक अर्थ में उन्हें अकेले के दम पर सारी चीजें खड़ी करनी थीं।

एक बार उन्होंने इस संदर्भ में कहा-''दुनिया में आज तक शांतिमय क्रांति कहीं हुई नहीं। जितनी क्रांतियां हुईं, वे सब हिंसक क्रांतियां हुईं। सिर्फ अपने देश में, महात्मा गांधी के विलक्षण नेतृत्व में राष्ट्रीय क्रांति हुई और वह शांतिमय हुई....गांधीजी जीवित रहते, तो समाज बदलने का काम शांतिमय तरीके से कैसे हो सकता है, यह करके दिखलाते। उनका असली काम तो वही था। अब वे तो हमारे साथ रास्ता दिखलाने के लिए रहे नहीं। इसलिए आग्रहपूर्वक आपसे कह रहा हूं कि हमारे सामने शांतिमय क्रांति का कोई नमूना नहीं है जिसकी हम लोग नकल करें। ऐसा मैंने कई बार पहले भी कहा है कि हर क्रांति अपनी किताब स्वयं लिखती है। कोई क्रांति, पिछली क्रांति की प्रतिलिपि नहीं होती।''....

....''मैं आंदोलन (बिहार आंदोलन) की व्यापकता और इसकी संभावना भी देख रहा हूं और तुमसे यह भी कहूं कि मैं जानता हूं कि मेरे पास वक्त बहुत कम है। मैं बापू की तरह सवा सौ साल जीने की बात नहीं कर सकता। इसलिए मैं कुछ दूसरे टाइम टेबल

से काम कर रहा हूं। मैं अपनी सारी शक्ति समेटकर उन विचारों की व्यावहारिकता के ठोस प्रमाण पेश करना चाहता हूं जो बापू ने, विनोबा ने समाज के सामने पेश किया, और मैं खुद जिन्हें मानता हूं।''.....

मैंने कहा (लेखक) —''विनोबा ने इस आंदोलन के प्रति जो रुख अपनाया है इससे एक दुःखद स्थिति यह बनी है कि विनोबा को अस्वीकृत करने का मानस बना है। इस कारण विनोबा के जिन विचारों का आंदोलन को सीधा लाभ मिल सकता था, उससे भी यह वंचित हो जाता है।''

''हां, यह आंदोलन का दुर्भाग्य है'', जयप्रकाश बोले, ''और एक क्रांतिकारी नेता की दृष्टि से देखो, तो इसमें विनोबा की भी विफलता ही है। पार्टी को छोड़ते वक्त मैं दलीय राजनीति और परंपरागत समाजवाद के बारे में जितने स्थिर निष्कर्ष पर पहुंच गया था, आज मैं उतने ही स्थिर निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि यदि सर्वोदय की कल्पना कभी धरती पर उतर सकेगी, तो एक शांतिमय, सतत आंदोलन का तरीका ही हमें अपनाना पड़ेगा। इसलिए मैं बाबा के विरोध के कारण अपनी अटपटी स्थिति के बावजूद इस प्रयोग में लगा ही रहने वाला हूं।''....

(जनता सरकार के गठन के बाद बीमारी के चलते उन्होंने कहा)

''घमंड तो नहीं करता हूं लेकिन गंगा बाबू, मेरे शरीर ने इस तरह से जवाब न दे दिया होता, तो मैं देश की किस्मत फिर पलट सकता था। भगवान के हाथों में इसका औजार बन सकता था... मेरी ताकत तो जनता है। काम करने का मेरा तरीका यही रहा है कि मैं सीधे जनता के बीच में जाता था। उनसे मुझे ताकत मिलती थी, दिशा मिलती थी। आज मैं उससे बिलकुल कट गया हूं। ये लोग कुर्सियों पर बैठे हैं, तो समझते हैं कि जनता इनके साथ है। मैं सारे देश में घूम सकता अगर, तो एक पल के लिए भी इनको कुर्सियों पर चैन नहीं लेने देता। ये या तो सीधे तरीके से काम करते या कुर्सियों से उतरना पड़ता इन्हें। इस आंदोलन ने जनता को उसकी शक्ति की पहचान कराई है। आज स्थिति ऐसी है कि लोगों को सही और गतिशील नेतृत्व मिल जाए, तो वे कहीं से कहीं पहुंच जाएंगे...लेकिन मैं क्या करूं, मजबूर हूं अपने जीवन का यह सूर्यास्त देखने के लिए...'' रात के सन्नाटे में, उनके कमरे में पलंग से लगकर खड़े हम तीन उनकी यह पीड़ा सुन रहे थे और उसका असाध्य दर्द महसूस कर रहे थे। पलंग से नीचे उतरते-उतरते वे एक अंग्रेजी कविता की कुछ पंक्तियां बोल गए।

सुला-भुना देना चाहता हूं गुजरी-गुजरान को,
चाहता हूं मैं शिथिल पड़ा रहूं,
और दरवाजे पर दस्तक होती रहे,
मेरे लिए जीवन का सूर्य ऐसा अस्त हो,
कि फिर कभी उगे नहीं। ❑

लोक-उम्मीदवार का चयन पूरा

29 अक्टूबर को बिजावर विधानसभा के मतदाताओं ने लोकतंत्र के इतिहास में एक नयी खिड़की खोली और अपनी सहमति से जैतपुर से निरंजन कुमार तिलक (किशनगढ़) को लोक-उम्मीदवार घोषित किया। गांधी-विचार को मानने वाले राष्ट्रीय युवा संगठन के सैकड़ों कार्यकर्ता पिछले 10 माह से इस दिशा में सक्रिय थे। बिजावर विधानसभा के 225 गांव/वॉर्ड में इस संगठन के साथी गये और हर गांव/वार्ड के मतदाताओं को संगठित कर मतदाता परिषद् बनायी, हर मतदाता परिषद् ने अपनी कार्यकारिणी बनायी और एक प्रतिनिधि का चयन किया। इन 225 ग्राम/वार्ड के प्रतिनिधियों से बनाया गया बिजावर विधानसभा के हाईकमांड की बैठक अक्टूबर 25,28 और 29 को बिजावर में हुई, जिसमें 150 गांव के प्रतिनिधि उपस्थित थे। हाईकमांड के सदस्य प्रतिनिधियों ने संभावित लोक-उम्मीदवारों के नाम घोषित किये। कुल मिलाकर 19 नाम सामने आये। इन नामों पर गहन विचार-विमर्श के बाद कई लोगों ने अपने नाम वापस ले लिये। अंततः बचे 8 नाम। ये 8 साथी आमने-सामने बैठे और आपसी चर्चा के बाद 4 नामों पर सहमति हुई। अंतिम दौर में 4 साथी और राष्ट्रीय युवा संगठन के कुछ साथी साथ बैठे और उनमें से एक लोक-उम्मीदवार घोषित करने की प्रक्रिया चलायी। लंबी चर्चा के बाद, हाईकमांड के सदस्यों ने चारों उम्मीदवारों का इंटरव्यू लिया व 'लिस्ट-पद्धति' से क्रमवार कम करते हुए निरंजन के नाम तक पहुंचे, निरंजन के लोक-उम्मीदवार की घोषणा के साथ ही मतदाताओं की सीधी भागीदारी और विमर्श से यह नया इतिहास बना। संगठन के प्रांतीय व लोकतंत्र अभियान के संयोजक अमित भटनागर ने कहा कि युवाओं के अथक प्रयास से संगठन के लोकतंत्र अभियान का नारा 'एक ही आवाज - एक ही नारा : वोट हमारा तो उम्मीदवार भी हमारा' साकार हुआ, संगठन के लक्ष्मी नारायण व प्रेमलाल यादव ने बताया कि निरंजन कुमार तिलक लोक-उम्मीदवार के रूप में 1 नवंबर 2013 को अपना नामांकन भरेंगे, नामांकन के साथ ही लोक-उम्मीदवार का चुनाव प्रचार अभियान का प्रारंभ होगा। पूजा अहिरवार, हरिशंकर चौरसिया, सुरेश यादव, सुनील अहिरवार, आनंद सिंह, घासीराम कोंदर सहित सभी ने इस अभियान को सफल बनाने की शपथ ली।

–अमित भटनागर

शोध से ज्यादा श्रद्धा की जरूरत

❑ अनुपम मिश्र

बहुत कम लोगों को पता होगा कि भारत ही नहीं एशिया का पहला इंजीनियरिंग कॉलेज कहां बना था? आप जानते हैं वह कब और क्यों बना?

यह जानना इसलिए भी जरूरी है कि आज तकनीकि का जो हमारा थोड़ा पढ़ा-लिखा समाज है उसकी नींव में हमारे वे अनपढ़ लोग रहे हैं जिनको हमने दुत्कार कर अलग कर दिया, लेकिन शायद ही इसके बारे में किसी को पता हो। मुझे चार-पांच आईआईटी में जाने का मौका मिला है। मैंने वहां के फैकल्टी से भी यह जानने की कोशिश की कि क्या उन्हें पता है कि इंजीनियरिंग की पढ़ाई कहां से शुरू होती है। आप उन्हें दोष न दें, लेकिन उनको भी नहीं पता। आज हम मानते हैं कि जितने सुविधा सम्पन्न शहर में रहेंगे उतनी अच्छी पढ़ाई होगी। लेकिन देश का पहला इंजीनियरिंग संस्थान कोई दिल्ली, मुम्बई या कोलकाता, मद्रास में नहीं बना। और जब बना तो उसमें प्रवेश के लिए कोई कैट टेस्ट भी नहीं देना होता था, जिसने बनाया वह भी देश में कोई उच्च शिक्षा का काम करने नहीं आये थे। ईस्ट इंडिया कंपनी वाले साफ-साफ व्यापार करने आये थे या शुद्ध हिन्दी में कहें तो लूटने के लिए आये थे। इसलिए उनको उच्च शिक्षा का कोई केन्द्र खोलने की जरूरत नहीं थी।

लेकिन 1847 में उसने हरिद्वार के पास रूड़की नामक एक छोटे से गांव में पहला इंजीनियरिंग कॉलेज खोला था। उस समय शायद रूड़की गांव की आबादी 700-750 रही होगी। वह हमारे देश का पहला इंजीनियरिंग कॉलेज था और उसे बनाने का एकमात्र कारण था लोकज्ञान का उपयोग। जिस लोकबुद्धि को हम भूल चुके हैं और अनपढ़ गंवार समझ बैठे हैं, रूड़की इंजीनियरिंग कॉलेज बनाने में उन्हीं लोगों की प्रेरणा थी। प्रसंग यह था कि अकाल चल रहा था। लोग मर रहे थे। लोग मरें इससे ईस्ट इंडिया कंपनी को कोई फर्क नहीं पड़ता था। लेकिन एक सहृदय अंग्रेज अधिकारी ने ईस्ट इंडिया कंपनी को एक डिस्पैच भेजकर कहा कि जो लोग मर रहे हैं उनमें तो आप लोगों को कोई दिलचस्पी नहीं होगी लेकिन अगर यहां आप एक नहर बनायेंगे तो आपको सिंचाई का कर मिलना शुरू हो जायेगा और अकाल से लोग निपट लेंगे। लेकिन मुश्किल यह थी कि उस समय कोई पीडब्ल्यूडी नहीं था। पब्लिक वर्क की ऐसी अवधारणा उस समय नहीं थी, इसलिए कोई विभाग भी नहीं था।

अंग्रेज महोदय ने स्थानीय लोगों को इकट्ठा किया। उनसे पूछा कि तुम लोग पानी का बहुत अच्छा काम जानते हो तो क्या नहर बना सकते हो? तो लोगों ने कहा कि हां बना सकते हैं। 200 किलोमीटर लंबी नहर बनानी थी लेकिन दो टुकड़े कागज भी नहीं प्रयोग किया गया। बिना ड्राईंग बोर्ड और बिना किसी यंत्र के उन्होंने यह नहर बनायी। मन पर उकेरा और जमीन नहर उभरती चली गयी। उसमें बीच में नहर को एक नदी पार करानी थी, जिसमें नदी से ज्यादा पानी गंगा का निकाल कर ले जाना था। आज हम अंग्रेजी में इसे अक्वाडक कहते हैं। वह भी उन लोगों ने ही डिजाइन किया था।

इन देहाती और गंवार लोगों ने चूने-गारे की मदद से 200 किलोमीटर की नहर बनायी। आज इस नहर को 200 साल हो गये लेकिन अभी भी यह नहर बराबर चलती है। लेकिन अंग्रेज अधिकारी ने ऐसा काम देखा तो फिर से उसने ईस्ट इंडिया कंपनी को एक पत्र लिखा। उसने सुझाव दिया कि ऐसे गुणीजन लोगों के बच्चों को पढ़ाने-चमकाने के लिए एक छोटा-सा इंजीनियरिंग कॉलेज यहां होना चाहिए। यह इन अनपढ़ लोगों की देन थी या उनका यह चमत्कार था कि अंग्रेज अधिकारी जो लूटने आया था उसको एक इंजीनियरिंग कॉलेज खोलकर देना पड़ा। जिन देशों को आज हम तरक्की का सूरमा मानते हैं उन जापान और कोरिया में भी तब तक कोई इंजीनियरिंग कॉलेज नहीं बना था। तब हमारे यहां इंजीनियरिंग कॉलेज खुला जो कि अनपढ़ लोगों की देन थी।

लेकिन दस साल बाद ही गदर शुरू हो गया। 1847 के बाद 57 जो उदार गिने-चुने अधिकारी इस तरह के प्रयोगों को बढ़ावा दे रहे थे कि यहां के जो लोग अनपढ़ माने जाते हैं वे बाकायदा इंजीनियर हैं और उससे ये देश चलना चाहिए, गदर से वह धारा एकदम से कट गयी। सबको ब्लैक लिस्ट किया गया और साफ-साफ कहा गया कि जो ईस्ट इंडिया कंपनी के वफादार हैं उन्हें ये सब पढ़ाई पढ़नी चाहिए। उनको और कोई चीज आती हो तो आये, हमारे लिए वे अनपढ़ हैं। इस तरह से वह रस्सी तब कटी लेकिन फिर कभी वह रस्सी हम जोड़ नहीं पाये।

30-35 साल में काम करते हुए मैंने→

आजाद भारत के गुलाम गांव

❑ किशनगिरी गोस्वामी

''पहले भारत आजाद गांवों का आजाद देश था, मुगल काल में आजाद गांवों का गुलाम देश बना। अंग्रेजी राज में गुलाम गांवों का गुलाम देश बन गया, और अब गुलाम गांवों का आजाद देश है भारत।'' **–विनोबा**

भारत गांवों का देश है। जब तक इसके गांव संगठित और स्वावलंबी थे, तब तक देश की अस्मिता एवं संस्कृति अक्षुण्ण रही। शक, हुण, गुर्जर, प्रतिहार, यवन, पठान और मुगल आदि यहां आए और विलीन हो गए। राजसत्ताएं केवल राजधानियों तक ही अठखेलियां करती रहीं। इसका मूल कारण था कि भारत के गांव स्वावलंबी थे, कृषि एवं ग्रामोद्योग इनकी अर्थव्यवस्था के मूल आधार थे। गांव की शालाओं में जड़ों से विलगाव के बजाए जड़ों से जुड़े रहने की शिक्षा मिलने के साथ ही गांव की पंचायत व्यवस्था में स्वशासन एवं सुशासन का भाव था। इसलिए राष्ट्रीय व्यवस्था पर न तो तंत्र का बोझ था और न ही विदेशी मुद्रा के लिए हाहाकार। ऐसे में विदेशी पूंजीनिवेश की भी समस्या नहीं थी। प्राणवान ग्रामोद्योगों के कारण बेरोजगारी का भूत भी नहीं सताता था। वैदिक काल के पूर्व से लेकर अंग्रेजों की ईस्ट इंडिया कंपनी की घुसपैठ तक भारत का यही इतिहास रहा है।

अंग्रेजों की गुलामी से मुक्त होने पर भी राष्ट्र की दिशा, मूल्य, व्यवस्था और संबंध नहीं बदले। अंग्रेजों के जमाने का प्रशासन, शिक्षा, न्याय और रीति-नीति विद्यमान रही, यानी सब वहीं का वहीं। फर्क सिर्फ इतना पड़ा कि तब देश इंग्लैंड का उपनिवेश था, आज देश के 5 लाख से भी अधिक गांव, शहरी अर्थनीति के उपनिवेश हैं। राष्ट्र का पुनर्निर्माण मुख्यतः इन गांवों का पुर्निर्माण है। भारत के गांव मात्र घरों के समूह नहीं हैं बल्कि ये वे जीवंत इकाइयां हैं, जिन्हें सदियों की विकसित परंपरा ने अस्मिता और चरित्र प्रदान किया है। ये लाखों गांव एक इकाई के रूप में संगठित रहकर ही, केंद्रीय सत्ता, आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक दमन और शोषण से अपने हितों की ही नहीं बल्कि अपने अस्तित्व की भी रक्षा कर सके हैं। निःसंदेह, आज गांवों के जीवन में भी अनेक दरारें हैं, किंतु वे पाटी जा सकती हैं।

परंपरागत समाजों में कृषि एवं ग्रामोद्योग दोनों गांवों एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर थे। खेती हेतु बीज, खाद, पानी सभी गांव में ही प्रकृति से उपलब्ध थे। इसलिए उपकरण भी ऐसे थे, जो मानव श्रम, पशु श्रम से चलते थे। मानव एवं पशु इन दोनों की चालक शक्ति, जिस ऊर्जा पर निर्भर करती है, वह अन्न और चारा इन दोनों का उत्पादन गांव में प्रचुर मात्रा में होता है। पशुओं से दूध एवं खाद तथा वृक्षों से फल एवं लकड़ी की प्राप्ति होती है। इस प्रकार वृक्ष एवं पशु मिलकर भोजन को संपूर्ण बनाते हैं। आज भी 10 एकड़ तक के खेत के लिए मानव एवं पशु ऊर्जा से खेती करना समग्रता की दृष्टि से लाभकारी है तथा यह प्रणाली संसाधनों की पोषणीयता को बनाए रखने वाली है। देश के शहर, भोजन, फल एवं दूध आदि के लिए गांव पर निर्भर करें, यह तो ठीक है किंतु बाजार की आधुनिक व्यवस्था के कारण गांव में उन चीजों का अभाव हो, जो कि गांव में ही पैदा होती हैं ऐसी व्यवस्था कतई स्वीकार्य नहीं होनी चाहिए।

जब तक भारत की ग्राम्य व्यवस्था बीमार और जीर्ण-शीर्ण रहेगी, उनमें स्वास्थ्य, स्वच्छ प्रशासन एवं सर्वांगीण विकास की बातें दिवास्वप्न ही हैं, क्योंकि अगर जड़ों में दीमक लगी हो तो पत्तों को सींचने भर से वृक्ष फल-फूल नहीं सकते। जिस शरीर की कोशिकाएं बीमार और क्षत विक्षत हों, उन्हें पौष्टिक आहार देकर भी स्वस्थ नहीं किया जा सकता। उसका निदान शल्य चिकित्सा ही है।

जो लोग खादी के माध्यम से ग्राम्य व्यवस्था सुधारना चाहते हैं, उन्हें ''वैचारिक या व्यापारिक'' का चिंतन कर इसे ''लोक स्वराज्य'' के उद्देश्य से चलाना होगा। जब संस्था तथा कार्यकर्ताओं का यह ध्येय हो जाएगा

→यह सब शोध के नजरिये से नहीं देखा। इसको मैंने श्रद्धा से देखा। शोध में तो पांच साल का प्रोजेक्ट होगा। मुझे मंत्रालय से पैसा मिलेगा तो करूंगा नहीं मिलेगा तो नहीं करूंगा। लेकिन अगर हम श्रद्धा रखेंगे तो हम उस काम को सब तरह की रुकावटों के बाद भी करके आगे जायेंगे। इसके लिए विशेषज्ञ बनना जरूरी नहीं। हमें समाज का मुंशी बनना होगा। समाज के अच्छे काम को मुंशी की तरह लोगों के सामने रखना होगा। तब शायद हमारी यह चिन्ता थोड़ी कम हो सके कि जिस समाज को हम पिछड़ा और अनपढ़ कहते हैं उनको साक्षर करने की जरूरत नहीं है बल्कि उनसे बहुत कुछ सीखने की जरूरत है। ❑

तो वे आज की केंद्रीय व्यवस्था से खादी का काम नहीं चलाएंगे। खादी कार्यकर्ता को गांव-गांव घूमकर ''ग्राम स्वराज्य'' का संदेश भी देना होगा। नौकरशाही द्वारा शोषण एवं निर्दलन का चित्र जनता के सामने रखकर उनमें मुक्ति का मंत्र भरना होगा। चरखा एवं ग्रामोद्योग से आर्थिक स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाना होगा। स्वावलंबन को केंद्र मानकर उनमें नियोजन की प्रवृत्ति पैदा कर परस्पर सहकारिता का अभ्यास कराना होगा। ऐसा करने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि वास्तविक स्वतंत्रता एवं स्वावलंबन के नियोजन की सिद्धि ग्राम विकास से ही संभव है। इस तरह खादी के माध्यम से भी हम ग्राम स्वराज्य की दिशा में अग्रसर हो सकेंगे।

दैनंदिन जीवन के संचालन में गांव अधिकाधिक स्वावलंबी हों तथा बाहर की निर्भरता कम से कम हो, यही ग्राम स्वराज्य का मूल मंत्र है। बाह्य निर्भरता में भी पड़ोस के गांव पर निर्भरता ज्यादा हो एवं जैसे-जैसे दूरी बढ़े निर्भरता कम से कमतर होती जाए। इसी तरह राष्ट्रीय एवं वैश्विक व्यवस्था के केंद्र में गांव ही हो। वर्तमान पूंजीवादी औद्योगिक विकास की नींव इससे उलट बनी है। अतः भारत के विकास का लक्ष्य परंपरागत समाज की इकाइयों (गांव) के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। अन्यथा विनाश अवश्यम्भावी है।

अतः फिर लौटें गांव की ओर। हमें गांधी के सपनों का स्वराज्य लाने हेतु गांवों को स्वावलंबी एवं सुखी बनाना है। जहां बसने का मन करे, ऐसे गांव बनाने हैं तथा हमें सरकार बनाने के तरीके बदलने हैं। गांव को लोकतंत्र के आधार की एक शक्तिशाली इकाई बनाना है, जिससे राज सत्ता एवं आर्थिक सत्ता का केंद्रीयकरण समाप्त हो सके। ❑

भ्रष्टाचार के मकड़जाल में भारत

❑ आदिल खान

गांधी की तस्वीर के नीचे रिश्वत की तैयारी है,
बुरा न मानो मेरे दोस्तों दफ्तर ये सरकारी है।
चपरासी से लेकर भ्रष्ट बाबू और अधिकारी है,
बुरा न मानो मेरे दोस्तों दफ्तर ये सरकारी है।

ये पंक्तियां भारत में जड़ जमा चुके उस भ्रष्टाचार के दर्द को बयां करती हैं जिसे रोजमर्रा की जिन्दगी में आम आदमी को हर कदम पर झेलना पड़ता है। दुनिया का कोई भी देश अब तक भ्रष्टाचार में भारत की बराबरी नहीं कर पाया है। यदि भ्रष्टाचार की रफ्तार यही रही तो शायद कर भी नहीं पायेगा। भारत में शिशु के जन्म-प्रमाण पत्र से लेकर दुर्घटना में मृत व्यक्ति का पोस्टमार्टम करवाने में रुपये का खुला खेल चलता है। भ्रष्टाचार के आरोपी कर्मचारियों व अधिकारियों का साफ कहना है कि हमें भी ऊपर साहब को देने पड़ते हैं। हम नहीं लेंगे तो साहब को क्या अपनी जेब से भरेंगे? भ्रष्टाचार के इस मकड़जाल में उलझे देश का भविष्य धुंधला और अस्पष्ट दिखायी दे रहा है।

भारत में भ्रष्टाचार से महफूज न शिक्षण संस्थाएं हैं, न अस्पताल हैं, न ही न्याय के मंदिर अदालतें। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि कोर्ट-कचहरी, पुलिस-चौकी व तहसीलें, प्रशासनिक भ्रष्टाचार के खुले अड्डे बन चुके हैं। आम आदमी को जब इन प्रशासनिक कार्यालयों से वास्ता पड़ता है तो वह हिसाब-किताब लगाते हुए नोटों को अपनी जेब में रख लेता है। क्योंकि उसे पहले ही मालूम है कि वह जहां जा रहा है वहां इन नोटों के अभाव में उसकी समस्या न कोई सुनेगा, न ही कोई उसे बैठने के लिए पूछेगा।

सरकारी कार्यालयों में ली जाने वाली रिश्वत का नाम भी बड़ा दिलचस्प है। कोई इसे दक्षिणा तो कोई व्यवस्था शुल्क और कोई सुविधा शुल्क के नाम से पुकारता है। सभी शासनिक-प्रशासनिक दफ्तरों में सुविधा शुल्क अनिवार्य बनता जा रहा है। महामहिम राष्ट्रपति महोदय ने भ्रष्टाचार के इस भयानक कड़वे सच को स्वीकारा और चेतावनी भरे लहजे में इसे सुधारने की अपील भी की। लेकिन नाराजगी, चेतावनी और अपील से भ्रष्टाचार पर अंकुश लग गया होता तो हम भ्रष्टाचार मुक्त देश में गर्व के साथ रह रहे होते। भारत में भ्रष्टाचार का विकराल रूप भविष्य में गंभीर चुनौतियों को जन्म दे सकता है।

केन्द्रीय सतर्कता आयोग (सी.वी.सी.) के भ्रष्टाचार संबंधी शिकायतों के आंकड़े बड़े ही चौकाने वाले हैं। आयोग को 2011 में भ्रष्टाचार की 17,407 शिकायतें मिली थीं, वह वर्ष 2012 में बढ़कर दो गुने से भी ज्यादा यानी 37,208 हो गयी हैं। ज्यादातर शिकायतें प्रशासनिक मुद्दों से जुड़ी हुई थीं।

गत पांच वर्षों में सी.वी.सी. को मिली शिकायतें इस प्रकार हैं :

वर्ष	शिकायतों की संख्या
2008	10,142
2009	14,207
2010	16,260
2011	17,407
2012	37,208

भारत को भ्रष्टाचार के मकड़जाल से निकालने के लिए युवाओं को संगठित होकर प्रयास करने होंगे। युवाओं द्वारा भ्रष्टाचार को रोकने के लिए आज किये गये प्रयास, कल बेहतर भारत की नींव रख सकते हैं। भ्रष्टाचार मुक्त भारत ही विकास के पथ पर अग्रसर हो सकता है। ❑

विदेशी पूंजी का महाभूत

❑ सुनील

"हमने 'गार' के भूत को दफना दिया है। अब पूंजी निवेशकों को डरने की जरुरत नहीं है। हमने खुदरा व्यापार में विदेशी पूंजी को इजाजत देने और ईंधन कीमतों में बढ़ोतरी के फैसले लिये हैं, जिनसे हमारी रेटिंग घटने का खतरा नहीं रहा। इन कदमों से अब निवेशक भारत में फिर से दिलचस्पी ले रहे हैं।"—वित्तमंत्री पी.चिदंबरम, 22 जनवरी, 2013, हांगकांग

भारत के वित्तमंत्री का यह बयान कई मायनों में महत्त्वपूर्ण है और बहुत कुछ कहता है। हांगकांग में सिटी बैंक और बीएनपी नामक दो बहुराष्ट्रीय बैंकों द्वारा 'निवेश के लिए 'भारत सम्मेलन' का आयोजन किया गया था जिसमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों के 200 प्रतिनिधि शामिल हुए। इस मौके पर चिदंबरम के मुँह से यह उद्‌गार निकले। अगले दिन वे सिंगापुर में इसी मिशन पर गए। उसके बाद यूरोप में इसी तरह अंतरराष्ट्रीय पूंजीपतियों की चिरौरी करने गए। इसी समय 23 से 27 जनवरी तक स्विट्‌जरलैण्ड के दावोस नगर में विश्व आर्थिक मंच की सालाना बैठक में भारत के वाणिज्य मंत्री आनंद शर्मा और शहरी विकास मंत्री कमलनाथ निवेशकों को लुभाने गए। उसके बाद विदेश मंत्री सलमान खुर्शीद ने यूरोप के दो देशों की यात्रा की तो उनके एजेण्डे में भी भारत-यूरोप आर्थिक सहयोग प्रमुख रूप से शामिल था।

यह साफ है कि इसके पहले भारत सरकार ने जो कई बड़े-बड़े फैसले लिये उनका मकसद विदेशी निवेशकों को खुश करना था। ये अंतरराष्ट्रीय पूंजीपति निवेश का फैसला करने के लिए अंतरराष्ट्रीय साख निर्धारण (रेटिंग) एजेंसियों की तरफ देखते हैं। स्टेण्डर्ड एण्ड पुअर, मूडीज, फिच जैसी ये एजेंसियां पूरी तरह नवउदारवादी-पूंजीवादी सोच पर चलती हैं और उनका एकमात्र मकसद बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों को बढ़ावा देना है। जिस फार्मूले से वे रेटिंग तय करती हैं, वह ब्याज दरों, शेयर बाजार, भुगतान संतुलन के चालू खाते के घाटे, सरकारी खर्च, विदेशी निवेशकों को रियायतों आदि पर आधारित होता है। अर्थव्यवस्थाओं के बारे में इनके अनुमान कई बार गलत निकले हैं। लेकिन भारत सरकार के लिए वही रेटिंग, शेयर सूचकांक, राष्ट्रीय आय वृद्धि दर जैसे ही मानक सर्वोपरि हो गए हैं।

यह 'गार' का भूत क्या है? भारत सरकार की आमदनी और घाटे से चिंतित पिछले वित्तमंत्री प्रणव मुखर्जी ने पिछले साल के बजट में 'गार' का प्रावधान किया था। यह अंग्रेजी के 'जनरल एन्टी अवॉयडेन्स रूल्स का संक्षेप है जिसका मतलब है कर-वंचन रोकने के सामान्य नियम। आय कर कानून के तहत बनाए जा रहे इन नियमों का मकसद देशी-विदेशी कंपनियों द्वारा करों की चोरी या कर से बचने की कोशिशों पर लगाम लगाना था। यह भी प्रावधान किया जा रहा था कि यदि कोई कंपनी कोई भी कर नहीं दे रही है तो उस पर एक न्यूनतम कर लगेगा। इसी बीच नीदरलैण्ड की वोडाफोन कंपनी ने भारत में टेलीफोन व्यवसाय के अधिग्रहण का देश के बाहर सौदा करके टैक्स से बचने की कोशिश की थी। उसको रोकने के लिए प्रणव मुखर्जी ने ऐसे सौदों को भी कर-जाल के दायरे में लाने और उसे पिछली अवधि से लागू करने की घोषणा की थी। वोडाफोन कंपनी पर करीब 11,218 करोड़ रुपये के टैक्स का दावा बनता था।

लेकिन प्रणव मुखर्जी की इन मंशाओं के जाहिर होते ही विदेशी कंपनियों में खलबली मच गयी। उन्होंने हल्ला मचाना शुरू कर दिया और भारत से अपनी पूंजी वापस ले जाने की धमकियां देनी शुरू कर दीं। मनमोहन सिंह दुविधा में फँस गये। इस बीच भारत के राष्ट्रपति के चुनाव का एक अच्छा मौका मनमोहन सिंह के हाथ में आया। प्रणव मुखर्जी को राष्ट्रपति बनाकर राह का रोड़ा हटाया गया। वित्तमंत्री का प्रभार लेते ही मनमोहन सिंह ने आश्वासन दिया कि 'गार' की समीक्षा की जायेगी। फिर मंत्रालय में चिदंबरम को लाया गया जिनकी कंपनी-भक्ति में कोई संदेह नहीं था। रंगराजन, कौशिक बसु, रघुराम राजन जैसे आर्थिक सलाहकार भी एक स्वर में अनुदानों को कम करने के साथ-साथ निवेशकों की आशंकाएं दूर करने का राग अलापने लगे। ऐसे ही एक अर्थशास्त्री पार्थसारथी शोम की अध्यक्षता में एक समिति बनायी गयी। उसने फटाफट अपनी रपट पेश कर दी। 14 जनवरी को सरकार ने घोषणा कर दी कि गार नियमों को तीन साल के लिए स्थगित किया जाता है और 1 अप्रैल, 2016 से उन्हें लागू किया जायेगा। इस बीच वित्तमंत्री यह भी घोषणा कर चुके थे कि किसी भी कंपनी को पिछली तारीख से कर के दायरे में नहीं लाया जायेगा। इससे वोडाफोन कंपनी को एक अरब रुपये से ज्यादा का फायदा हो गया।

गार स्थगन की घोषणा के साथ ही विदेशी पूंजीपतियों में खुशी की लहर दौड़ गयी और दो दिन में ही सेन्सेक्स 20,000 के ऊपर पहुंच गया, जो कि दो साल का सबसे ऊंचा स्तर था। इसी समय भारत सरकार ने डीजल की कीमतें क्रमिक रूप से बढ़ाने, बड़े उपभोक्ताओं को बाजार दर पर डीजल देने, धीरे-धीरे डीजल कीमतों को पूरी तरह नियंत्रण-मुक्त करने और डीजल पर अनुदान समाप्त करने का फैसला कर दिया। इससे भारतीय जनता पर चाहे बोझ पड़ा हो और महंगाई का नया दौर शुरू होने की सम्भावना बनी हो, लेकिन रिलायन्स तथा एस्सार कंपनियों को काफी फायदा पहुंचने वाला है। इन कंपनियों

के पास तेलशोधन की क्षमता है, लेकिन डीजल-पेट्रोल सस्ता होने के कारण वे अपने पेट्रोल पम्प नहीं चला पा रही थीं। अब बाजार दरें लागू होने पर उनका धंधा चल निकलेगा। इसी तरह दुनिया की सबसे बड़ी और बदनाम तेल कंपनी शेल ने भी भारत में पेट्रोल पम्पों के लाइसेंस ले रखी है। उसकी भी कमाई के दरवाजे खुल जायेंगे। खुदरा व्यापार के दरवाजे भी प्रबल विरोध के बावजूद वालमार्ट जैसी विशाल कंपनियों के लिए खोले गये हैं। पिछले कुछ सालों में दरअसल सरकार के ज्यादातर फैसले कंपनियों को खुश करने और फायदा पहुंचाने के लिए ही किये गये हैं।

यह एक विचित्र बात है कि जो सरकार बजट घाटे का रोना रोती रहती है और खर्च कम करने के लिए आम जनता को मिलने वाले अनुदानों व मदद को कम करने पर तुली हुई है, वही सरकार दुनिया की बड़ी-बड़ी कंपनियों से करों को वसूलने और कर-चोरी रोकने के उपायों को आसानी से छोड़ देती है। मारीशस मार्ग जैसी कर-चोरी को उसने पूरी तरह इजाजत दे रखी है। कंपनियों को दी जाने वाली कर-रियायतें तथा उनको अनुदान हर बजट में विशाल मात्रा में बढ़ते जा रहे हैं। कारण यही है कि सरकार में बैठे लोग किसी भी कीमत पर विदेशी पूंजी को रिझाने, लुभाने, खुश करने और बुलाने के लिए बेचैन हैं। इसके लिए वे देशहित, जनहित, सरकारहित, नैतिकता, सम्प्रभुता सबको तिलांजलि देने के लिए तैयार हैं। विदेशी पूंजी की यह गुलामी अभूतपूर्व है। आधुनिक भारत के इतिहास का यह एक शर्मनाक अध्याय है।

दरअसल भूत 'गार' का नहीं है, विदेशी पूंजी का महाभूत है जो भारत सरकार पर पूरी तरह सवार हो गया है। सरकार होश खो बैठी है और यह भूत उसको चाहे जैसा नचा रहा है। लातों के भूत बातों से नहीं मानते। इस भूत को उतारने के लिए एक बड़ा जन-विद्रोह करने का वक्त आ गया है। ❑

'गुजरात मॉडल' के निहितार्थ

❑ संदीप पाण्डेय

राष्ट्रीय स्तर पर गुजरात चर्चा में आ गया है। वहां प्रसिद्ध विकास के मॉडल की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। उसकी पड़ताल होना भी स्वाभाविक है।

एक चीज जिसकी तरफ कम लोगों का ध्यान गया है वह है गुजरात में जीने का खर्च। यह काफी ज्यादा है। यह सिर्फ गुजरात की सम्पन्नता की वजह से नहीं है। दूसरे बड़े शहरों जैसे मुम्बई या कोलकाता से तुलना करें तो अहमदाबाद में रहना काफी खर्चीला है। बाजार में एक कप चाय यहां 10-15 रुपये में मिलती है। इसी से अंदाज लगाया जा सकता है कि आम इनसान के लिए यहां अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कितना दुष्कर होगा। खाद्य सामग्रियों की कीमत तो यहां अन्य जगहों से अधिक है ही। यहां बाल कटवाने के लिए कम-से-कम 50 रुपये तो लगेंगे ही। एक मध्यम वर्गीय परिवार के रहने के लिए फ्लैट का किराया लगभग रुपये 10,000 प्रति माह होगा और बिजली का बिल अलग से न्यूनतम 2,000 माह होगा। यह तब जबकि तेज गति से बड़े पैमाने पर अहमदाबाद में सभी जगह बहुमंजलीय आवासीय इमारतें दिन-रात खड़ी होती दिखायी दे रही हैं।

यह हम भारत के अन्य भागों से तुलना करें तो कह सकते हैं कि गुजरात में रहना महंगा है। इससे दो निहितार्थ हैं। एक तो यहां उपभोक्ता वर्ग की आय अधिक होगी। इस आय के मुताबिक ही चीजों के दाम ज्यादा हो गये हैं। किन्तु गरीब वर्ग को इस मूल्य वृद्धि की ज्यादा मार झेलनी पड़ती है। इसका यह भी परिणाम है कि अमीर और गरीब के बीच आय में अंतर गुजरात में देश के अन्य हिस्सों से ज्यादा है। डॉ. मनमोहन सिंह और मोंटेक सिंह अहलूवालिया के लिए यह स्थिति शायद उनके आर्थिक विकास के मॉडल की सफलता का एक मानक होगी।

यदि गरीबों की स्थिति पर नजर दौड़ाई जाय तो देश के अन्य भागों से यहां कोई विशेष अंतर नहीं है। अहमदाबाद रेलवे स्टेशन पर अच्छे-खासे कपड़े पहने लोग भीख मांगते मिल जायेंगे। रेलवे के डिब्बों में उसी तरह बच्चे सफाई करते मिलेंगे। झुग्गी-झोपड़ियों की स्थिति काफी बुरी है। अच्छे आवास, पानी और शौचालयों का अभाव है। गटर साफ करते हुए औसत दो सौ लोगों की सालाना मृत्यु हो जाती है। दैनिक मजदूर, न्यूनतम मजदूरी से वंचित हैं और श्रम कानूनों की खुलेआम धज्जियां उड़ायी जा रही हैं। गुजरात में आदिवासियों की स्थिति विशेषरूप से बदतर है। कुपोषण की समस्या इनके बच्चों में ज्यादा है।

गुजरात में वैसे तो शराबबन्दी है। किन्तु रुपये 40,000 मासिक के भुगतान पर पुलिस के संरक्षण में विदेशी शराब का धंधा चलाया जा सकता है। इनका संचालन आपराधिक पृष्ठभूमि के लोग करते हैं। गुजरात पुलिस की भूमिका पर कुछ और चर्चा जरूरी है। सूरत में एक परिवार को सात वर्ष पहले बांगला देशी बता पति-पत्नी व नौ में से छह बच्चों को भी जेल में डाल दिया गया। पति-पत्नी अभी भी जेल में हैं। इस परिवार के पास राशन कार्ड, मतदाता पहचान-पत्र, पासपोर्ट, बिजली का बिल आदि चीजें हैं। नौ बच्चों की पैदाइश, जिसमें सबसे बड़ी 26 वर्ष की लड़की है। परिवार का मुखिया एक दरगाह से जुड़ा हुआ था। सवाल यह है कि यदि परिवार दोषी है तो उनके खिलाफ क्यों नहीं कोई कार्रवाई हुई, जिन्होंने राशन कार्ड, मतदाता पहचान पत्र, पासपोर्ट आदि बनाये। पासपोर्ट बनने में तो पुलिस की स्वीकृति आवश्यक है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुजरात में देश के अन्य हिस्सों से शायद ज्यादा फर्जी मामलों में लोगों को फंसाने का काम होता है। इन मामलों में बड़े नेताओं और पुलिस अधिकारियों की संलिप्तता तो अब जगजाहिर है। मुख्यमंत्री→

भोजन, कुपोषण और परम्परागत खेती

❑ भूमिका कलम

मध्य प्रदेश के आदिवासी इलाकों ने जैसे-जैसे अपने पारम्परिक खाद्यान्नों को खोया वैसे-वैसे उन पर कुपोषण की चपेट बढ़ती गयी। वहीं दूसरी ओर कुपोषण दूर करने के लिए सरकार द्वारा खर्च किये जा रहे करोड़ों रुपये और संसाधनों पर आज भी आदिवासी परम्पराएं भारी हैं। इसे समझने के लिए दो उदाहरणों पर गौर करते हैं। पहला है, महाराष्ट्र के अहमदनगर की संगनौर तहसील के आदिवासियों का, जो जंगल में परम्परागत खेती कर कुपोषण और बीमारियों को दूर कर रहे हैं। इसी तरह बाजरा की लौह तत्त्व से भरपूर उन्नत किस्में बनाकर इंटरनेशनल क्रॉप रिसर्च सेंटर ने दावा किया कि बाजरा कुपोषण दूर करने का एक महत्त्वपूर्ण खाद्यान्न है। बाजरा भील जनजाति का पारम्परिक भोजन रहा है। ऐसे प्रयोग मक्का, कोदो, कुटकी को लेकर भी जारी हैं।

नये राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम में गरीबों के पेट भरने का ध्यान तो रखा गया लेकिन पोषण का नहीं। इन योजनाओं में मध्य प्रदेश के प्रमुख आदिवासी इलाके झाबुआ में रहने वाली भील जनजाति भी शामिल है। इनकी पोषण परम्पराओं पर गौर करना इस लिहाज से भी दिलचस्प है क्योंकि 50 साल पहले तक यहां कुपोषण के कारण बच्चों की मौत और कैंसर जैसी बीमारियों का नामोनिशान नहीं था।

विकास की आधुनिक प्रक्रिया में इस प्रकृति जनित प्रदेश के आदिवासी बहुल इलाके की भील जनजाति मोटे अनाजों को अपने भोजन में शामिल कर कई पोषक तत्त्वों की कमी से दूर थी। पोषण की सुरक्षा के लिए बन रहे नये मापदंडों में भी इन बातों का कहीं खयाल ही नहीं रखा गया कि वे कुपोषण की इस लड़ाई को कैसे लड़ेंगे। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून में गेहूं, दाल, चावल की एक निश्चित मात्रा का प्रावधान करने की कोशिश तो की गयी है, लेकिन पोषक तत्त्वों के अनुपात और प्रति व्यक्ति कैलोरी ग्रहण को फिर नजरअंदाज कर दिया गया।

अक्टूबर, 2012 में झाबुआ के मेघनगर प्रखण्ड के अगासिया और मदरानी गांवों में कुपोषण और रक्ताल्पता के कारण 20 बच्चों ने दम तोड़ा था। बच्चों की मौत का यह सिलसिला भी जारी रहा और सरकारी योजनाओं में कई प्रयोग भी। वहीं सरकारी आंकड़ों की मानें तो आज भी जिले के 54 फीसदी अतिकुपोषण का शिकार हैं। क्षेत्र में कार्य कर रहे गैर सरकारी संगठनों के अनुसार सरकारी प्रणाली ने यहां कुपोषण के आंकड़े जुटाने और आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं की हाजरी पर बहुत जोर दिया, लेकिन कुपोषण की जड़ में जाने के लिए इनके पास शायद कोई प्रणाली ही नहीं है।

तीन साल से कम उम्र के बच्चों की मौत का सबसे बड़ा कारण डायरिया बताया जा रहा है। इलाके के एक स्वास्थ्य अधिकारी बताते हैं कि भील आदिवासी बच्चों के शरीर में जिंक और आयरन की कमी के कारण उल्टी-दस्त से नहीं लड़ पाते और दम तोड़ देते हैं। यह कारण सामने आने के बाद सरकार ने बच्चों को आँगनबाड़ी में जिंक और आयरन की गोलियां देने का उपाय खोजा है। इन दिनों यह कार्यक्रम तेजी से आँगनबाड़ियों में जारी है। इसके दूसरे पहलू पर नजर डालें तो खाद्यान्न में सुधार की कोई बात ही नहीं की गई, जिससे माता, पिता सहित परिवार के अन्य सदस्यों को भी पोषण मिले। यूनिसेफ के अनुसार भारत में 6-60 माह के 70 फीसदी बच्चे लौह तत्त्व की कमी से ग्रस्त हैं। इस सिलसिले में एक तथ्य यह भी है कि जो माताएं आयरन की कमी से ग्रस्त होने की आशंका स्वस्थ माताओं के बच्चों की तुलना में सात गुना ज्यादा होती हैं। हालांकि इस लड़ाई के कुछ सामुदायिक और शोध आधारित हल निकल भी रहे हैं।

एक हालिया अध्ययन के अनुसार गरीबों को भोजन रहे बाजरा को अब उनकी सेहत का रखवाला भी कहा जा रहा है। जर्नल ऑफ न्यूट्रीशन के अनुसार इस बात की पुष्टि हुई है कि बाजरे की किस्मों में लौह तत्त्व की मात्रा कई गुना बढ़ाई जा सकती है। सामान्यतौर पर भी बाजरे में अन्य अनाजों की तुलना में आयरन की मात्रा 10 फीसदी अधिक ही होती है। जवाहरलाल नेहरु मेडिकल सेंटर द्वारा 22से 35 माह के 40 बच्चों

→के खास अमित शाह जिस मामले में आरोपी हैं उस सोहराबुद्दीन का सम्बन्ध अवैध धंधों में से था। सोहराबुद्दीन फर्जी मुठभेड़ में मारा गया। इस मामले में कुछ बड़े पुलिस अधिकारी जेल में हैं।

वर्तमान मुख्यमंत्री के कार्यकाल में निजीकरण को खूब बढ़ावा दिया गया है। अडानी नामक कंपनी, जिसका गुजरात के बाहर लोगों ने कम नाम सुना होगा, ने सी. एन. जी. आपूर्ति व बिजली उत्पादन के क्षेत्र में लगभग एकाधिकार कायम किया हुआ है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह मुख्यमंत्री के काफी नजदीक है। इस कंपनी को मुण्ड्रा में एक निजी बंदरगाह चलाने की भी अनुमति मिली हुई है। इस कंपनी के हितों को बढ़ावा देने के लिए राज्य व लोगों के हितों को कई बार ताक पर रख दिया जाता है।

गुजरात में सम्पन्न वर्ग की सुविधाओं की पूर्ति का ध्यान रखा जाता है और शेष वर्गों के लिए मुख्यमंत्री के पास समय नहीं है। मध्य वर्गीय गुजराती समाज भी, जिसमें पैसे की सोच प्रधान है, उनसे खुश है क्योंकि मुख्यमंत्री ने उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखा है। उनकी नीतियों का समाज में कम भाग्यशाली तबके के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ रहा है इससे उसे बहुत मतलब नहीं है। उसे इससे भी मतलब नहीं कि गुजरात के विकास के मॉडल के पीछे राजनेताओं, अधिकारियों, अपराधियों, निजी कंपनियों और ठेकेदारों का एक गठजोड़ सक्रिय है। ❑

पर किए गए प्रयोग में उन्हें अधिक आयरन मात्रा वाले बाजरे के आटे का उपमा, शीरा और रोटी खिलाई गई। ये सभी बच्चे आयरन की कमी से ग्रसित थे। इसके परिणाम अच्छे रहे और बच्चों में हीमोग्लोबीन की मात्रा बढ़ी। डॉक्टरों के अनुसार खून की कमी से ग्रसित बच्चों को अन्य बीमारियां भी जल्दी ही पकड़ती हैं। इसलिए आदिवासी समुदाय अपनी परंपरागत फसलों और खाद्यान्नों के आहार से अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ रहेगा। इस अध्ययन के निष्कर्षों का संकेत है कि रोजाना 100 ग्राम बाजरे के आटे से बच्चों के लिए जरूरी लौहतत्त्व की पूर्ति की जा सकती है।

महाराष्ट्र के अहमदनगर के संगनौर तहसील के सोमनाथ कुटे ने एक चर्चा में बताया कि इलाके के जो आदिवासी पिछले सालों में जंगलों से बाहर आ चके थे उनमें लगातार स्वास्थ्य की परेशानियां बढ़ रही थीं। हालात यहां तक पहुंचे की इलाज कराने के कारण हर दूसरे परिवार पर कर्ज का बोझ बढ़ रहा था। तब कई परिवारों ने शहरी इलाकों में पलायन के बजाय जंगलों में लौटना ठीक समझा और अपनी परंपरागत जंगल आधारित खेती को अपनाया। इसमें मुख्य पुरानी फसलों को फिर से बोया जिसमें कालाभात, कोदो, कुटकी और मांडु (पारंपरिक मूंगफली) शामिल हैं। कुटे के अनुसार आश्चर्यजनक रूप से तीन वर्षों में ही परिणाम सामने आये और आदिवासियों में बीमारियां कम हुईं। बच्चे और माताएं अपेक्षाकृत पुष्ट हुए हैं।

मध्यप्रदेश में इंदौर के पास माहू में ही खेती करने वाले बाग सिंह का कहना है, आदिवासियों ने अपनी एक फसल और खो दी है जिसे अंबाड़ी कहते हैं। यह लाल रंग का फल देने वाला झाड़ीनुमा पौधा होता है, जो लौह तत्त्व से भरपूर है। एक समय इस कांटे वाली जंगली झाड़ी के पत्तों से सब्जी, फल से शर्बत और तने से रस्सी बनाकर खेती कार्यों में इसका उपयोग किया जाता था। वैसे अब महाराष्ट्र के कई इलाकों में अब इसकी व्यावसायिक खेती हो रही है। *(सप्रेस)*

अर्थव्यवस्था पर छाया अंधकार

❑ देविन्दर शर्मा

सितंबर, 2011 में भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने संयुक्त राष्ट्र महासभा को संबोधित करते हुए कहा था कि ''कुछवर्ष पूर्व विश्व, वैश्वीकरण एवं वैश्विक पारस्परिक निर्भरता के लाभों को लेकर निश्चिन्त हो गया था। लेकिन आज हमें उस उन्माद के नकारात्मक प्रभावों से तारतम्य बैठाना पड़ेगा। सन् 2008 के आर्थिक संकट के बाद से स्थिति की बहाली की जो उम्मीद जगी थी, उसका पूरा होना अभी बाकी है।'' अतएव प्रधानमंत्री से यह सवाल पूछने की आवश्यकता है कि यदि उन्हें इस बात का भान था कि क्या कुछ घटित होने वाला है तो उन्होंने भारत को उसी स्वविध्वंस के रास्ते पर क्यों धकेला? क्योंकि आज रुपया औंधे मुंह गिर पड़ा है। चालू खाते का घाटा और आयात तथा निर्यात के बीच का अंतर सन् 1991 के पहले के स्तर पर पहुंच चुका है और वित्तीय घाटे में कमी की कोई सूरत नजर नहीं आ रही है।

वैसे प्रधानमंत्री को यह सब अच्छी तरह मालूम होगा। सन् 2005 एवं 2009 के दौरान जब आर्थिक वृद्धि की दर 8 से 9 प्रतिशत थी और संभवतः अपने चरम पर थी तब भी इस उच्च आर्थिक वृद्धि की वजह से रोजगर सृजन नहीं हो रहा था। योजना आयोग के अध्ययन के अनुसार इसी अवधि में 1.4 करोड़ लोग कृषि से बाहर हुए और 53 लाख लोगों को निर्माण क्षेत्र और रोजगार से हाथ धोना पड़ा। यदि वृद्धि अतिरिक्त रोजगार में परिवर्तित नहीं होती और इसके बजाय इससे बेरोजगारी बढ़ती है, तो समझ लेना चाहिए कहीं पर कुछ गलत हो रहा है।

पिछले 9 वर्षों से जब से मनमोहन सिंह ने देश की बागडोर संभाली, तब से भारत में सस्ते आयातित उत्पादों की बाढ़-सी आ गयी है और आयात की सीमा 50 अरब डॉलर (3 लाख करोड़ रुपये) तक पहुंच गयी है। इसका करीब 54 प्रतिशत आयात सिर्फ चीन से ही होता है। आयात होने वाले इन अधिकांश उपभोक्ता उत्पादों को देश में ही निर्मित किया जा सकता है। लेकिन इतना ही काफी नहीं था भारत अब चीन के साथ मुक्त व्यापार अनंबुध पर हस्ताक्षर करना चाहता है। वैसे भारत अन्य 34 देशों के साथ ही द्विपक्षीय व्यापार समझौते करने की जल्दबाजी कर रहा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि भारत में निर्यात के मुकाबले आयात बढ़ता रहा है, जिसका सीधा सा अर्थ है ये व्यापार समझौते देश के लिए लाभदायक नहीं हैं। प्रधानमंत्री इसका दोष किसी और पर नहीं मढ़ सकते, क्योंकि यह जानते हुए कि आयात आसमान छूते जा रहे हैं, प्रधानमंत्री स्वयं द्विपक्षीय व्यापार समझौतों को बढ़ावा दे रहे हैं।

भारत एवं यूरोपियन यूनियन व्यापार के लंबित समझौते के मामले को लें। यूरोपियन यूनियन इस बात पर जोर डाल रहा है कि भारत शराब एवं स्पिरिट पर आयात शुल्क कम करके इसका बाजार खोले और दूध के आयात पर शुल्क में भारी कमी करे और इसे वर्तमान स्तर 60 प्रतिशत से कम करके 10 प्रतिशत पर ले आये। इससे आयातित दूध की बाढ़ आ जायेगी। जबकि त्रासदी यह है कि भारत विश्व में दूध का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। सस्ते एवं अत्यन्त अधिक सब्सिडी प्राप्त कृषि उत्पादों के साथ ही साथ निर्मित सामग्री के आयात का अर्थ है बेरोजगारी का आयात। उदाहरणार्थ खाद्य तेलों के आयात शुल्क को 300 प्रतिशत से घटाकर शून्य प्रतिशत पर लाने से देश अब प्रतिवर्ष 60 हजार करोड़ रुपये का खाद्य तेल आयात कर रहा है। →

मृत्युदंड : क्या सभ्य समाज का द्योतक है?

❑ प्रशांत कुमार दुबे

त्वरित न्याय का एक नमूना देखिये! मध्य प्रदेश के सीहोर जिले के इछावर ब्लॉक के कनेरिया गांव में 11 जून, 2010 को मगनलाल ने अपनी 5 बेटियों को मौत के घाट उतारा। प्रकरण दर्ज हुआ। 3 फरवरी, 2011 को सीहोर अदालत से उसे फांसी की सजा सुनाई गयी। 12 सितंबर, 2011 को उच्च न्यायालय ने भी यह सजा बरकरार रखी और 9 जनवरी, 2012 को उच्चतम न्यायालय ने इसकी पुष्टि कर दी। यही नहीं 22 जुलाई, 2013 को राज्यपाल और राष्ट्रपति के यहां से भी इसकी दयायाचिका खारिज हुई और तुरत-फुरत 8 अगस्त, 2013 को फांसी का दिन मुकर्रर कर दिया गया। यानी केवल तीन साल में ही प्रकरण का निपटारा। जबलपुर सेंट्रल जेल में बंद इस कैदी को फांसी देने के लिए जल्लाद भी लखनऊ से आ गया, रिहर्सल भी हो गयी थी, लेकिन 7 अगस्त को फांसी की सजा को लेकर दिल्ली के कुछ प्रगतिशील वकीलों ने रात 11 बजे इस पर स्थगन लिया।

लेकिन यह त्वरित निपटारा हमारी न्यायिक व्यवस्था के ऊपर एक तमाचा भी है। यह दर्शाता है कि जो व्यक्ति आर्थिक रूप से कमजोर है, जिसके पास एक अच्छा वकील खड़ा करने की हिम्मत न हो, उसे पर्याप्त साक्ष्यों के अभाव में भी धड़धड़ाते हुए फांसी के तख्ते पर पहुंचा दिया जाता है। मगनलाल को इस प्रकरण में विधिक सहायता तो मिली, लेकिन उसकी गुणवत्ता अच्छी नहीं थी और मगन का पक्ष कहीं भी ठीक से नहीं रखा गया। इस पूरे प्रकरण में न्याय व्यवस्था से कई जगह चूक हुई है। साधारणतया फांसी दिये जाने का कारण सहित लंबा आदेश आता है। शायद यह पहला ही ऐसा प्रकरण है जिसमें केवल एक शब्द में फैसला आया है, जिसमें लिखा है ''बर्खास्त''।

मगनलाल बारेला मध्य प्रदेश के बड़वानी जिले सेंधवा ब्लॉक से आकर 30 बरस पहले कनेरिया में बस गया। परिवार के पास दो एकड़ जमीन थी तथा परिवार में थीं दो पत्नियां और 8 बच्चे। घर खर्च चलाने हेतु परिवार की दोनों महिलाएं भी पास ही के जंगल से मूली (लकड़ी का गट्ठा) लाकर बेचती थीं। इसका अधिकतम दाम 45 रुपये तक ही

→ अर्थशास्त्री खाद्य सुरक्षा अधिनियम हेतु 1.25 लाख करोड़ रुपये के प्रावधान को लेकर हाय तौबा मचा रहे हैं। उनका कहना है इतना सार्वजनिक खर्च वित्तीय घाटे में और बढ़ोतरी करेगा। लेकिन वे इस तथ्य से आंख मूंद लेते हैं कि सन् 2005-06 से अब तक उद्योग को कर छूट के रूप में 30 लाख करोड़ रुपये दिये जा चुके हैं। मई 2013 से निर्यात ऋणात्मक 1.6 प्रतिशत तक सिकुड़ गया है और निर्माण क्षेत्र तो कमोवेश नष्ट हो चुका है। तो क्या यह सिद्ध नहीं हो जाता कि दी गयी कर छूट एक बेफालतू का खर्च था? यदि इसकी वसूली हो जाती है तो देश का सारा वित्तीय घाटा अपने आप समाप्त हो जाता।

भारतीय उद्योगपतियों को मिली व्यापक कर छूट जिसे 'राजस्व माफी' (रेवेन्यु फारगॉन) की श्रेणी में डाल दिया गया, का यदि देश के भीतर ही निवेश किया गया होता, तो इससे लाखों-लाख रोजगार निर्मित हो सकते थे। एक ओर औद्योगिक उत्पादन में गिरावट जारी है, लेकिन इसी के साथ चौकाने वाली बात यह है कि निजी क्षेत्र नकदी के भंडार पर बैठा हुआ है। मार्च 2012 से भारतीय उद्योगपति समूह 10 लाख करोड़ के नकद भंडार पर बैठा है। अतएव भारत को घुटने पर बैठकर प्रत्यक्ष निवेश को आकर्षित करने की जरूरत नहीं है, जबकि उसके अपने कॉरपोरेट नकदी के पहाड़ पर विराजमान हैं। इसे बाहर निकालने से निवेशकों के विश्वास एवं व्यापार के माहौल होने में ऊर्जा का संचार होगा।

इस सबसे ऊपर क्रेडित स्विस की रिपोर्ट बता रही है कि भारत के दस सबसे बड़े निगमों (कॉरपोरेट्स) ने बाहरी व्यावसायिक ऋण लेने में 6 गुना वृद्धि की है और यह आंकड़ा भयभीत कर देने वाली संख्या 6,30,000 करोड़ रुपये के स्तर पर पहुंच गया है। परंतु इस विशाल ऋण से ठीक-ठाक आमदनी न होने से बाहरी ऋण बढ़ते ही जा रहे हैं। अतः इस बात की जांच की आवश्यकता है, अत्यधिक बाहरी ऋण और नकद भंडारण के रहते किस वजह से सरकार साल दर साल करों में छूट देती जा रही है? पिछले दो वर्षों में ही सरकार 11 लाख करोड़ खैरात में बांट चुकी है।

दुःख यह है कि प्रधानमंत्री ने यह सब जानते हुए इस बात की अनुमति दी है कि मुक्त बाजार नीतियां एवं विनियमन ही इस आर्थिक संकट के पीछे हैं। लेकिन यथोचित सुधारवादी कदम उठाने के उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था को डगमगाने और नीचे गिरने की अनुमति दी। यहीं उनसे चूक हो गयी। वास्तविकता यह है कि बीमार अर्थव्यवस्था को रास्ते पर लाने का प्रस्तावित रास्ता भी वही है, जिससे अर्थव्यवस्था में गिरावट आयी थी। इतना ही नहीं, यह समस्या को और बढ़ायेगा। *(सप्रेस)*

मिल पाता है। इसके अलावा रोजगार गारंटी और वन विभाग में थोड़ा काम मिलता है।

वैसे मगनलाल पर कर्ज की बात कई मीडिया रिपोर्टों में सामने आयी है, पर परिवार इससे अनभिज्ञ है। संतू और बसंती बाई बताती हैं कि कई बार हम लकड़ी बेचकर आटा लाते थे तब खाना बनता था। फसल आने पर कुछ दिन तो सब ठीक रहता था, लेकिन उसके बाद फिर यही स्थिति बन जाती थी।

चार्जशीट के अनुसार मगनलाल ने गरीबी की परिस्थिति से तंग आकर अपनी पांच बेटियों की हत्या कर दी। लेकिन जमीनी परिस्थितियां और कोई साक्ष्य ऐसा सिद्ध नहीं कर पाते। उनके भाई (अगन और जगन) बताते हैं कि शाम के करीब 5 बजे हम लोग अपने घरों में थे। उसकी दोनों पत्नियां संतू और बसंती रोज की तरह लकड़ी लेने जंगल गयी थीं। मगन घर पर लड़कियों के साथ अकेला था। अचानक हल्ला व हंगामा सुनकर हम लोग इस तरफ आये, तो हमने देखा कि हमारा भाई मगन, फांसी के फंदे पर झूल रहा है। छगन दौड़कर घर से कुल्हाड़ी लाया और भाई की रस्सी काटी तब वह अर्धमरणासन्न अवस्था में था। उसके बाद हमने देखा कि घर के अंदर पांचों लड़कियां (1 से 6 वर्ष तक की) मरी पड़ी हैं। सभी की गर्दन पर वार किया गया था। हमने सोचा कि भाई ने ही इन्हें मारा है और तब हमने उसे पेड़ से बांधा और पुलिस को फोन किया।

उसने कैसे और क्यों लड़कियों को मारा या उसने ही लड़कियों को मारा यह अभी तक स्पष्ट नहीं है। मगन का कहना था कि किसी ने आकर मेरी लड़कियों को मारा और मुझे टांग कर चले गये। भाइयों और पत्नियों का कहना है कि उस समय वह शराब पिये हुए नहीं था। मगन कहता है कि उन तीन दिनों में क्या हुआ, मुझे कुछ नहीं पता। लोगों का कहना है कि वह लड़कियों को बहुत प्यार करता था और कभी किसी को मारता भी नहीं था। वह तो बेटियों को अपने साथ बिठाकर ही खाना खिलाता था, पर उस दिन अचानक क्या हुआ, यह समझ से परे है।

गांव की ही मधु मीना कहती हैं कि मगन को घटना के दो-तीन माह पहले से ही कुछ हो गया था। वह गुमसुम और शांत रहने लगा था, कुछ बात करते तो ही बोलता था। जंगल में ही घूमता रहता था। वह कुछ पागल-सा हो गया था। ऐसा केवल मधु नहीं, बल्कि अधिकांश लोग यही कहते हैं। लेकिन पूरे प्रकरण में ऐसा जिक्र कहीं भी नहीं आया है। बहरहाल इस पूरे प्रकरण ने देश में फांसी के जिन्न को फिर से बाहर लाकर खड़ा कर दिया है। अजमल कसाब की फांसी ने इस बहस को फिर सुलगाया है कि भारत को मृत्युदंड बरकरार रखना चाहिए या नहीं। एमनेस्टी इंटरनेशनल के अनुसार भारत में पिछले दो दशक में केवल चार व्यक्तियों को फांसी दी गयी है, लेकिन इस कतार में चार सौ पैंतीस नाम हैं। मानवाधिकार समूहों ने भी भारत में मृत्युदंड खतम किये जाने की मांग फिर दोहराई है। वैसे 110 देश मृत्युदंड को नकार चुके हैं।

उच्चतम न्यायालन ने 1982 में ही कहा था कि मृत्युदंड विरलतम (रिअरेस्ट ऑफ रेयर) मामलों में ही दिया जाना चाहिए। हालांकि हाल ही में भारत ने अड़तीस अन्य देशों के साथ संयुक्त राष्ट्र में मृत्युदंड का समर्थन किया। यह भारत के विरोधाभास को ही दर्शाता है। एक ओर देश ने मानवाधिकारों के संरक्षण वाली अंतर्राष्ट्रीय संधियों पर हस्ताक्षर किये हैं, लेकिन दूसरी ओर वह उन थोड़े-से देशों में शामिल है जो मृत्युदंड को बरकरार रखने की पैरवी कर रहे हैं।

मृत्युदंड लोकतांत्रिक व्यवस्था और सभ्य समाज के नाम पर कलंक है। गौरतलब है कि सरकार पहले तो किसी व्यक्ति को गरीबी में जीने दे, उसे बेहतर जीवन जीने के अवसर ही उपलब्ध न कराये, लेकिन उन विपरीत परिस्थितियों में जब व्यक्ति हताश-निराश होकर कोई कदम उठा ले तो उसे फांसी दे दी जाये। बहरहाल, फांसी देकर सरकार ने अपनी कमियों पर ही परदा डाला है। गौरतलब है कि मगनलाल की पत्नियां और शेष 3 बच्चे पिछले 3 वर्षों में सामाजिक कार्यकर्ताओं की बदौलत ही उससे पहली बार मिल पाये हैं।

महात्मा गांधी ने कहा था कि मैं मृत्युदंड को अहिंसा के खिलाफ मानता हूं, अहिंसा से परिचालित व्यवस्था हत्यारे को सुधारगृह में बंदकर सुधरने का मौका देगी। अपराध एक बीमारी है, जिसका इलाज होना चाहिए। आम्बेडकर ने भी कहा था कि मैं मृत्युदंड खतम करने के पक्ष में हूं। एक मानवाधिकार कार्यकर्ता होने के नाते मुझे लगता है कि जब भी कहीं कोई व्यक्ति फांसी पर चढ़ाया जाता है तो वह अकेला नहीं, बल्कि उसके साथ उसके मानवाधिकार भी सूली पर टांग दिये जाते हैं।

यह वही सरकार है जो कसाब को फांसी दिये जाने के मामले में कहती रही कि आम आदमी चाहता था कि कसाब को फांसी दी जाये, इसलिए दी गयी। क्या फांसी की सजा का प्रावधान किसी जनमत संग्रह का परिणाम है? अगर लोग चाहेंगे कि सरेआम चौराहे पर फांसी दी जाये, तो यह मांग सरकार स्वीकार कर लेगी? न्याय सुधार के लिए है लेकिन मृत्युदंड लोगों को यह अवसर प्रदान नहीं करता। हमें समझना होगा कि मृत्युदंड कभी भी न्याय का पर्यायवाची नहीं हो सकता।

(सप्रेस)

स्वराज्य विद्यापीठ : जिन्दगी की जीत पर यकीन

❑ डॉ. मनाली चक्रवर्ती

स्वराज्य विद्यापीठ के स्थापना दिवस पर कई सारे सवालों से हम घिरे हैं—पर शायद सबसे मुख्य सवाल है कि आखिर शिक्षा का आजादी से क्या लेना देना। चलिए यह तो तय हुआ कि सही मायने में आजादी हासिल करने के लिए आजाद दिमाग/आजाद सोच का होना जरूरी है—पर आजाद सोच की शिक्षा हमें कैसे मिल पाएगी? वैसे तो आज कल ज्यादातर शहरों में शिक्षा एक व्यवसाय का रूप धारण कर चुकी है। क्या मौजूदा शिक्षा प्रणाली जो सिर्फ दौड़ना सिखाती है—आस-पास सबको पछाड़कर, कुचलकर आगे बढ़ना सिखाती है, वह हमें आजाद खयाल की शिक्षा दे सकती है? कतई नहीं।

आइये इसे और नजदीक से समझें। आधुनिक शिक्षा, जो कि पश्चिमी देशों में उभरी और पनपी, का बुनियादी फलसफा समझने के लिए उसका इतिहास टटोलना जरूरी है।

करीब पांच सौ साल पहले यूरोप का रईस तबका जिनको कि भारत, चीन, फारस आदि में उत्पादन किये गए बेशकीमती मसलिन, रेशम, चाय, मसाले, इत्र आदि सामान की तलब मची रहती पर उसे पर्याप्त मात्रा में हासिल करने के लिए उनके पास कोई सीधा रास्ता न था। उन्हें इतालिय, प्राच्य, अरबी वणिकों का मुंह ताकना पड़ता था और ऊपर से मुंह मांगा दाम भी देना पड़ता था। उन्होंने फिर उल्टी चाल चली। भारत पहुंचने के लिए समन्दर के रास्ते वे निकल पड़े पर दक्षिण अमेरिका पहुंच गये। उस भूखण्ड से वे परिचित न थे पर वहां की अपार सम्पदा को देखकर उन्होंने उस पर कब्जा कर लिया। दक्षिण अमेरिका या लातिनी अमेरिका में उन दिनों कई सम्पन्न सभ्यताएं थीं, पर यूरोपीय वणिकों ने अपने उन्नत हथियार के जरिये उनको पछाड़ दिया और हावी हो गये। इस जबरिया जमीन दखल के दौरान लातिनी अमेरिका की 90 प्रतिशत आबादी का सफाया हो गया। अब यूरोपीय साम्राज्य के पास सोना-चांदी तो था पर जमीन के नीचे दबा हुआ—उसे निकालने के लिए जो मानवशक्ति चाहिए थी वह तो पहले से ही मारी जा चुकी थी। इस स्थिति के चलते यूरोप की शक्तियों ने एक और महाद्वीप पर कब्जा किया—अफ्रीका। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में वहां से करीब डेढ़ करोड़ अफ्रीकी युवक-युवतियों को जहाजों में मवेशियों की तरह ठूंसकर अमेरिका लाया गया। इन गुलामों से बेरहमी से काम लिया जाता और इनकी मेहनत से खदान, बागान, खेत, खलिहान सब फलने लगे। अब सैकड़ों टन सोना-चांदी बहने लगा और वे लातिनी अमेरिका से यूरोप होते हुए भारत और चीन में पहुंचता, और उसके एवज में तमाम ऐशोआराम का सामान यूरोप के अमीरों को उपलब्ध होने लगा।

लातिनी अमेरिका तबाह हुआ, अफ्रीका गुलाम हुआ, और धीरे-धीरे दुनिया के धनवान देश चीन और भारत उपमहाद्वीप भी उपनिवेशवाद के घेरे में आ गये। यहां तक कि यूरोप के देशों के भी गरीब किसान वर्ग अपने खेतों से उजाड़े गए और यूं तैयार हुए औद्योगिक क्रांति के पैदल सैनिक (जंग में सबसे पहले मरने वाले सैनिक), दुनिया के इस पहले दौर के भूमण्डलीकरण से एक छोटा-सा पर भीषण धनवान तबका उभरा जिनकी मुट्ठी में थी अपार सम्पदा। इस नये युग ने नये तरह के प्रतिष्ठानों को जन्म दिया—जिन्हें हम आज कॉरपोरेशन कहते हैं। पिछले दो सौ सालों से दुनिया भर में सही मायने में कॉरपोरेशन राज चला आ रहा है और उसके बल पर एक 'global elit' वर्ग दुनिया की सारी चल-अचल सम्पत्ति हथियाते चले आ रहे हैं और इतिहासकारों ने इस प्रक्रिया को तरक्की बताया और बताते चले आ रहे हैं। हमारी शिक्षा-प्रणाली पर भी इस तरक्की का अमिट प्रभाव है, यह इतिहास के इन रक्तरंजित पन्नों से ही प्रेरित है।

नब्बे के दशक के आते-आते भूमण्डलीकरण के नाम पर जो दुनिया भर में लूट मची उससे हम सब परिचित हैं। ताकतवर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने दुनिया की सभी संपदा को जोरों से कब्जाना शुरू किया और दुनिया भर की सरकारें अपनी-अपनी जनता के हित को बेचकर उनके लिए रास्ते साफ करने लगीं। और सस्ती जमीन, और सस्ते तेल, सस्ते खनिज, सस्ते जल-जंगल, पहाड़-नदियां और सस्ते मजदूर। दुनिया भर में इन ताकतवर कॉरपोरेशनों को रिझाने की मानो होड़ लग गयी। इस दमनकारी कॉरपोरेशन का कोई सगा नहीं, कोई अपना नहीं। हमारे देश के लगभग सभी हिस्सों में आज आम जनता विदेशी एवं देशी कंपनियों की ज्यादतियों से जूझ रही और संघर्ष कर रही है। वैसे ही अफ्रीकी किसान भाई भारत की बड़ी-बड़ी कंपनियों की मार से परेशान हैं। पिछले 12 सालों में भारतीय कंपनियों ने अफ्रीकी देशों की सरकारों के सहारे करीब 74 लाख हेक्टेयर जमीन हड़पी है। इसमें से 6 लाख हेक्टेयर तो इथियोपिया जैसे भीषण भुखमरी से ग्रसित देश में ही है। लाखों की तादाद में अफ्रीकी किसान परिवार समेत बेघर हो गए हैं—उनकी रोजी का आखिरी सहारा भी उनसे छीन गया है। क्या एक भारतीय नागरिक होने के नाते हम इस जघन्य लूट पर नाज करेंगे या फिर अपनी अफ्रीकी बहनों के साथ मिलकर स्वदेशी कॉरपोरेटों का विरोध करेंगे। यह फैसला हमें करना है।

आज शिक्षा के नाम पर यह पढ़ाया जा रहा है कि एक अमीर उल्पमत को और अमीर बनाने के लिए बहुजन की संपदा और अधिकार छीनना ही प्रगति है। दुनिया भर के नामी गरामी शिक्षा प्रतिष्ठान और उनमें कार्यरत काबिल प्रोफेसर जन यही शिक्षा बांटते हैं। पर क्या आम जनता इस भीषण प्रहार से दब गयी?

कतई नहीं। दुनिया भर में जगह-जगह आंदोलन छिड़े, जल, जंगल, जमीन बचाने के लिए। बनवारी लालजी इनमें से कई आंदोलनों

की अगुवाई में थे, पर जो बात वे जल्द ही समझ गए कि महज प्रतिवाद करने से काम न चलेगा। प्रतिरोध के साथ-साथ तीखा विश्लेषण और भविष्य के समाज की अवधारणा भी निहायत जरूरी है—संघर्ष और निर्माण के दोनों पहिये के बिना यह गतिमान न होगा।

आजादी, राजनीतिक आजादी, बेमायने है अगर हमारी सोच गुलाम है, संघर्ष बेमतलब है अगर हमारे प्रेरणास्रोत दुनिया के शोषणकर्ता ही हैं। हम भी चाहे अनचाहे अपने से कमजोर को दबाकर आगे बढ़ना ही तरक्की की एकमात्र परिभाषा मानेंगे। हमें दुनियाभर में फैली इस dog eat dog (यानी कि जरूरत पड़ने पर अपने निकट जनों को मार कर आगे बढ़ना) की फलसफा से लड़ना होगा, नए आदर्श तलाशने होंगे। और यही स्वराज विद्यापीठ जैसे प्रयासों की भूमिका समझने की निर्णायक कड़ी है। स्वराज विद्यापीठ का मानना है कि हमें अपनी समझ बढ़ानी होगी और सामान या बाजार के भूमण्डलीकरण के विरोध में इनसान, मजदूर और इनसानियत की ग्लोबलिज्म के लिए संघर्ष करना होगा। वे सब विभाजन रेखाएं जो हमें संगठित होने से रोकती हैं, झूठमूठ की दीवारें बनती हैं उन्हें आमूल उखाड़ना होगा—चाहे वे देशों के बीच हों, चाहे भाषा, धर्म, जाति, स्त्री-पुरुष, गोरा-काला कोई भी। विएतनामी भाई-बहनों से कंधा मिलाना होगा, लातिनी अमेरिकी बंधुओं से लड़ना सीखना होगा, अफ्रीकी कुपोषित बच्चों की माँओं के साथ रोना होगा और आदिवासी साथियों के साथ नाचना होगा—प्रकृति से फिर रिश्ता जोड़ना होगा। हमें समझना होगा कि इनसानों द्वारा बनाया गया संस्थान कॉरपोरेशन अब आदमखोर दानवों की तरह इनसानों का ही खून चूस रहा है, उनकी मेहनत को लूट रहा है और उनके साथ-साथ इस सुन्दर धरती और उसमें बसने वाले तमाम जीव-जन्तुओं और उनको सहारा देने वाले जंगलों, नदियों, पहाड़ों, समंदरों सबको तहस-नहस किया जा रहा है और यह हमें मंजूर नहीं, कतई नहीं। इस विनाशकारी आंधी को हमें रोकना होगा और साथ ही साथ हमें नये समाज की संरचना भी करनी होगी। हमारा विश्वास है कि स्वराज विद्यापीठ और उसके पीछे जो सोच है वह उस दिशा में एक छोटा पर ठोस कदम है।

आज यह तंत्र एक दुर्ग समान है जिसे चारों ओर से सतर्क सिपाहियों ने घेर रखा है, इस महल के मालिकों के पास बंदूक हैं, कमान हैं, कुत्ते हैं, सही मायने में यह आज दुर्भेद्य प्रतीत होता है। पर वह है नहीं वह तो सिर्फ बहुमत आबादी की मानसिक गुलामी के बल पर पनप रही है। ऐसा लगता है कि बहुमत आबादी वर्तमान में अधसोये से अपनी बेरंग जिंदगी ढो रही है बस। मानो अधिकांश लोगों को कोई विषाक्त नशीली दवा दी जा रही हो जिसके चलते उनका दिलोदिमाग हमेशा आच्छादित रहता हो।

स्वराज विद्यापीठ जैसे प्रयासों का मुख्य लक्ष्य होगा उस सोये हुए आच्छादित दिमाग पर अपना स्थान बनाना, उसे जगाना और अहसास दिलाना की वह गुलाम है। अगर सोच आजाद होंगे तो गुलामी से जूझने के तरीके तो निकल ही आयेंगे।

स्वराज विद्यापीठ को हम इस तंत्र की अजेय, दीवार पर उग आई एक पीपल की टहनी मान लें। शुरुआत में उसको सब नजर-अंदाज करेंगे, अवहेलना से कोई इसकी तरफ देखेगा भी नहीं पर अगर उसने जमीन पकड़ ली तो उसकी जड़ें अंदर ही अंदर से बढ़ेंगी और धीरे-धीरे इस विशाल हवेली की नींव गल जायेगी, और एक दिन वह पीपल का पेड़ इस हवेली को तोड़ते हुए अपने प्रचण्ड रूप से प्रकट होगा। और हमें विश्वास है ऐसा ही होगा क्यों कि हवेली निर्जीव पत्थरों से बनाया गया है। यह ठोस तो है पर उसमें जान नहीं है, और प्रहार करने पर वह सिर्फ टूट सकती है। उसके मुकाबले पीपल का पेड़ सजीव है जितना उसका तन मजबूत है, उससे भी मजबूत हैं उसकी जड़ें और वह मिट्टी से जुड़ी है, उसे एक तरफ से काटो तो भी वह मरती नहीं फिर टहनियां निकल आती हैं, फिर धूप की तलाश करने लगती हैं, उसे टूटने का डर नहीं, वे जिंदा रहना जानती हैं। हमें हवेली नहीं पीपल का पेड़ बनना है। दुष्यंत कुमार की चंद पंक्तियां :

तू जिंदा है तो जिंदगी की जीत पर यकीन कर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ले जमीन पर
हजार भेष धरके आई मौत तेरे द्वार पर
मगर तुझे न छल सकी चली गयी वो हारकर
नयी सुबह के संग सदा तुझे मिली नयी उमर
अगर कहीं है स्वर्ग तो उतार ले जमीन पर।

(स्वराज विद्यापीठ के स्थापना दिवस पर दिया गया व्याख्यान का मुख्य अंश) ❑

रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन

पश्चिम बंगाल सर्वोदय मंडल द्वारा 23-24 सितंबर, 2013 को लोकनायक सभा-भवन, गांधी मिशन, दासपुर, पश्चिम मिदनापुर में सर्वोदय रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन आयोजित किया गया।

सम्मेलन का उद्घाटन माल्यार्पण एवं दीप प्रज्ज्वलित कर सर्व सेवा संघ की अध्यक्षा सुश्री राधा भट्ट द्वारा किया गया। सम्मेलन में पश्चिम बंगाल के विभिन्न जिलों के वरिष्ठ सर्वोदय कार्यकर्ताओं को सम्मानित किया गया। सुश्री राधा भट्ट द्वारा उत्तराखंड की त्रासदी व प्राकृतिक संसाधनों का क्रूरतम दोहन पर सारगर्भित व्याख्यान हुआ। जल, जंगल व जमीन पर ग्राम-सभा का अर्थात् सामुदायिक अधिकार हो, इस पर पुरजोर बल दिया। इस सत्र की अध्यक्षता प्रो. निहानेन्दु मुखर्जी ने किया तथा पूरे सत्र का संचालन पश्चिम बंगाल सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष श्री नारायण भाई ने किया।

दूसरे सत्र के मुख्य वक्ता सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री चंदनपाल एवं क्षेत्रीय संगठक रमण कुमार थे। इसकी अध्यक्षता पश्चिम बंगाल के पूर्व अध्यक्ष विमल पाल व संचालन पश्चिम बंगाल सर्वोदय मंडल के सचिव श्री विश्वजीत घोरई ने किया।

दूसरे दिन प्रथम सत्र के मुख्य वक्ता प्रो. प्रशांत सामंत ने अन्त्योदय से सर्वोदय पर विस्तार से प्रकाश डाला तथा दूसरे सत्र के मुख्य वक्ता प्रमुख पत्रकार आलोक घोष ने सर्वोदय के लिए पत्रकारों की भूमिका पर प्रकाश डाला। **–रमण कुमार**

काम की रपट

लोक स्वराज्य-जनजागरण यात्रा

❑ अविनाश चन्द्र

1970 के दशक में जयप्रकाश नारायण के मार्गदर्शन में मुसहरी प्रखण्ड (जिला मुजफ्फरपुर, बिहार) में बनी नयी ग्रामस्वराज्य सभाओं को रमेश पंकज (मंत्री, मुजफ्फरपुर डेवलपमेंट एजेंसी) सघन रूप से एनजीओ के माध्यम से लगे हुए हैं, से स्वीकृति लेकर वहां के गांवों में भ्रमण करने का 23 से 30 अगस्त, 2013 तक कार्यक्रम चला।

23 अगस्त को रमेश पंकज तथा जिला सर्वोदय मंडल के मंत्री कैलाश ठाकुर ने संबद्ध गांवों में कार्यक्रम रखा था।

24 अगस्त को गांव के मध्य विद्यालय में एमडीए के अध्यक्ष मंडलेश्वर तिवारी, मंत्री रमेश पंकज, जिला सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष तथा जगन्नाथ पाण्डे, नरौलीडीह के कामेश्वर प्रसाद सिंह, कैलाश ठाकुर शिक्षकों के साथ मौजूद थे। सभी साथियों से चर्चा हुई और लोक स्वराज्य के विचार जो यहां काफी हद तक शिथिल हो चुका है, फिर से जड़ जमाने पर विचार रखे गये। विद्यार्थियों की सभा में गांधी के बचपन के प्रसंगों और बच्चों को समझने लायक ग्राम स्वराज्य के विचारों को सरल भाषा में रखा गया।

25 अगस्त ग्राम नरौली सेन में—श्री कामेश्वर प्रसाद सिंह ने सभा का आयोजन किया। इन्होंने पड़ोस के गांव नरौलीडीह में पांच साल पहले नयी ग्राम स्वराज्य सभा का गठन किया था जिसके वे अध्यक्ष भी हैं। सभा में ग्राम पंचायत के वर्तमान मुखिया, पूर्व मुखिया, पंचायत वार्डों की सदस्य महिलाएं तथा ग्रामीण साथी मौजूद थे, हमने वर्तमान पंचायत तथा ग्रामस्वराज्य विचार पर आधारित भावी पंचायत के फर्क को, ग्रामसभा एवं समिति (पंचायत) के फर्क का ग्रामसभा सर्वोपरि है, मालिक है और पंचायत उसकी सेवक है, समझाने का प्रयास किया। वर्तमान पंचायत को महिला शक्ति के माध्यम से, नीति की ओर मोड़ने, अनीति को दूर करने के क्रम में सत्याग्रह विचार पर प्रकाश डाला गया।

26 अगस्त ग्राम माधोपुर में बैठक का आयोजन विशेष था। यह एम डी ए के अध्यक्ष मंडलेश्वर तिवारी का गांव है। यहां एक हाई स्कूल है, जिसमें छात्र-छात्रायें बहुत ही अनुशासित ढंग से अपनी यूनिफार्मों में अलग-अलग बैठे थे। उपस्थिति देखकर मेरा हौसला बढ़ा। मैंने ज्यादातर बातें छात्र-छात्राओं को सम्बोधित करते हुए जयप्रकाश नारायण के जीवन प्रसंगों पर प्रकाश डाला, छात्र-छात्राओं को समझ में आने लायक लोकस्वराज्य की कुछ बातें प्रस्तुत कीं और गांव के भीतर अनीतिपूर्ण समाज को नीति की पटरी पर लाने के लिए प्रेरित किया।

दूसरी बैठक मंडलेश्वर तिवारी के निवास पर हुई। यहां 12-13 लोग थे। राजनीति, समाजनीति को समझने वाले थे। यहां हमने राजनीतिक-आर्थिक विकेन्द्रीकरण तथा अकेन्द्रीकरण (संविधान संशोधन के माध्यम से) विचार रखे, जिसमें केन्द्र को सिर्फ 5 विषय रक्षा, आन्तरिक सुरक्षा, विदेशी सम्बन्ध, न्याय तथा वित्त ही सौपने, ग्राम सभा को अधिकतम अधिकार सौपने। उसे वास्तव में लोक संसद बनाने, ग्राम सभा, क्षेत्रीय सभा और जिला सभा को विधायी अधिकार देने की बातें सामने रखीं। इस हेतु जनजागरण का आह्वान किया। संसद के असीम अधिकारों की तानाशाही पर प्रकाश डाला, जिसमें संविधान में आपातकाल में किये गये संशोधनों (धारा 368 में 4 तथा 5 जोड़कर) की जानकारी दी। धारा 368 (4) में आशय है कि संसद संविधान में संशोधन किसी भी सीमा तक कर सकती है, उसकी शक्ति असीम है। धारा 368 5 में है कि इन संशोधनों को किसी भी कोर्ट में चुनौती नहीं दी जा सकती। हमने कहा कि संसद की ऐसी तानाशाही होते हुए लोकस्वराज्य कैसे पनप सकता है। हमने यह भी समझाया कि संसद कानूनी संप्रभू हो सकती है, लेकिन जनता राजनीतिक संप्रभू है, और संसद, संविधान में संशोधन सभी कुछ भंग करके नये ढंग से रचना कर सकती है, जिसके लिए व्यापक जनजागरण की जरूरत है।

शाम को तीसरी सभा थी ग्राम मोमिनपुर में। वहां वास्तविक आजादी तथा राजनीतिक आजादी में भेद, स्वराज्य तथा शासन के सुराज में भेद पर प्रकाश डालते हुए ग्राम स्वराज्य को समुचित ढंग से समझाने का प्रयास किया।

27 अगस्त, ग्राम-मणिका—मध्य विद्यालय पर छात्र-छात्राओं की सभा हुई। उपस्थिति अधिक थी जिसमें छात्राएं 90 प्रतिशत थीं। हमने छात्र-छात्राओं को समझाने का प्रयास किया कि गांव में मिलकर चलने से स्वर्ग (ग्राम स्वराज्य) और मिलकर नहीं चलने से नर्क बनता है, गांव की शक्ति शहर की शक्ति पर हमेशा भारी पड़ने वाली है, श्रम काफी वजनदार है मुद्रा से।

बाद में शिक्षकों की गोष्ठी में कुछ प्रश्न खड़े हुए। शिक्षकों ने कहा कि वे बहुत कोशिश करते हैं लेकिन छात्र-छात्राओं में जरूरी अनुशासन नहीं ला पाते हैं। कारण कि वे उन्हें पीट नहीं सकते, उन्हें फेल नहीं कर सकते। हमने उन्हें समझाया कि वे बच्चों पर उनके योग्य छोटी-छोटी जिम्मेवारियां सौंपें, उन्हें अपनी समस्याओं को अपने आप हल करने के लिए प्रेरित करें, यानी बालक स्वयं से बात करना सीखे और एक बाल संसद 4-5 खण्डों में कर दें। ताकि हर खण्ड में 20-25 से ज्यादा बालक न हों, ताकि समूह ठीक से विचार कर सके।

28 अगस्त की शाम को बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ, सर्वोदय ग्राम के कार्यालय में प्रेस कार्फ्रेंस हुई। प्रेस वालों ने लोकस्वराज्य पर व्याख्यान देने को कहा। दूसरे दिन वह अखबारों में प्रकाशित हुआ।

29 अगस्त ग्राम मादापुर में—यह ग्रामदानी गांव है, इसकी अलग ग्राम सभा भी है। जिसकी अगल बैठकें होती रहती हैं। इस ग्राम सभा के पास लगभग 50 हजार का फण्ड तथा लगभग 60-70 हजार की वस्तुएं दरी, कनात, बर्तन आदि हैं। जो सस्ते किराये पर ग्रामीणों को दिये जाते हैं। यहां सभा चलती है, यह जानकर अच्छा लगा। इसके अध्यक्ष श्री जगन्नाथ पाण्डे ही हैं। तमाम प्रयासों के बावजूद भी इसे पंचायत के अधिकार नहीं मिले हैं, बल्कि उसे पंचायत में ही विलीन कर दिया गया है।

विद्यालय पर छात्र-छात्राओं की सभा हुई। उसके बाद एक मंदिर पर विचारशील लोगों की गोष्ठी हुई। उनसे कुछ बुनियादी बातें कहने की प्रेरणा हुई। मैंने आज के प्रचलित विकास की अवधारणा पर प्रहार करते हुए, उससे होने वाली सामाजिक तथा पर्यावरणीय क्षति पर प्रकाश डाला। श्रम, संयम, सेवा, स्वावलम्बन, परस्परावलम्बन, प्रकृति प्रेम पर आधारित नयी विकास अवधारणा को प्रस्तुत किया। खूब चर्चा हुई, अनेक मुद्दों पर स्पष्टीकरण दिये गये। नयी विकास शैली सिर्फ ग्रामस्वराज्य पर आधारित ग्रामसभा में, प्रत्यक्ष लोकतंत्र में ही सम्भव है, यह समझाने का प्रयास किया गया। हमने इस बात पर प्रकाश डाला कि दुनिया के सामने सबसे बड़ी चुनौती धरती का सदुपयोग और जल-जंगल-जमीन-खनिज की लूट रोकने की है। ❑

कोमलता से ही बचेगी सभ्यता

❑ डॉ. रामजी सिंह

विश्वभर में बढ़ती संकीर्णता के चलते राष्ट्रवाद का संयंत्र इतना गतिहीन हो गया है कि उसके स्थान पर विश्व राज्य की कल्पना को साकार करना ही होगा। यह केवल सुकरात, विंडेल विलकी की पुस्तक ''एक विश्व'' और राहुल सांकृत्यायन की ''22वीं सदी'' के समान स्वप्नदर्शी कल्पना का उपन्यास नहीं है, बल्कि विश्व मानवता की रक्षा के लिए एकमात्र उपाय है। एशियाई देशों के सम्मेलन में गांधीजी ने भी जोर देकर कहा था कि ''मैं विश्व के एकीकरण के बिना जीना नहीं चहता।'' आज पश्चिम यूरोप के 28 देशों में एक मुद्रा, एक संसद, एक पारपत्र और एक बाजार स्थापित हो गया है तो क्या हम इस दुर्बल और अशक्त संयुक्त राष्ट्रसंघ के बदले एक समर्थ विश्व सरकार की स्थापना नहीं कर सकते? जिसमें किसी देश विशेष का वर्चस्व या मुट्ठीभर देशों की दादागिरी न होगी और सब समता, स्वतंत्रता और भ्रातृत्व की भावना से एक वैश्विक क्रांति का श्रीगणेश करेंगे।

जो धर्म मानवता के लिए शांति, सेवा दया-दान तथा परोपकार के प्रति अपनी निष्ठा मानता है, वह भी आज स्वार्थ और वर्चस्व के लिए मानव विद्वेष का एक अखाड़ा बन गया है। इसीलिए स्वामी विवेकानंद ने व्यक्तिगत धर्म के बदले विश्व धर्म की बात की थी। रवीन्द्रनाथ ने भी सांप्रदायिक धर्म के स्थान पर मानव धर्म का पक्ष लिया। गांधीजी ने तो यहां तक कहा कि ''अपने ही धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानने का अर्थ है दूसरे धर्म को हीन समझना।'' जो एक अस्वस्थ अहंकार है। इसलिए उन्होंने सर्वधर्म समभाव का संदेश दिया। विनोबाजी ने स्पष्ट कहा है कि आधुनिक युग में मजहब और सियासत के दिल लद चुके हैं। अब तो विज्ञान और रुहानियत का जमाना आया है। राष्ट्रकवि दिनकर ने भी कहा था कि एक हाथ में कमल एक में धर्म दिप्त विज्ञान लेकर उठने वाला है धरती पर हिंदुस्तान। यहां कमल किसी राजनीतिक दल के धम्मपद का वह कमल है जो सर्वथा और सर्वत्र अनासक्त होता है।

वैश्वीकरण के लिए विश्व राज्य, शोषण एवं विषमतारहित अर्थरचना और विश्व धर्म तो चाहिए ही लेकिन सबों के संरक्षण के लिए मातृत्व की शीतल छाया भी चाहिए। दुर्भाग्य से मानवता के इतिहास में प्रारंभ से लेकर आज तक पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था ही कायम रही है। वह सत्ता हो या शस्त्र, शिक्षा हो या सामाजिक नेतृत्व सभी पर पुरुष का ही वर्चस्व छाया रहा है। यही कारण है कि त्रेता युग में भी मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रामराज्य में भी वनवास के पश्चात जगत् जननी सीता की अग्नि परीक्षा लेनी पड़ी। जबकि लक्ष्मण या राम की परीक्षा आवश्यक नहीं मानी गई। द्वापर में तो कौरवों की भरी सभा में धर्मराज युधिष्ठिर, गांडीवधारी अर्जुन, गदाधारी भीम के साथ-साथ धर्म की प्रतिमूर्ति भीष्म, आचार्य द्रोण और कृपाचार्य के समक्ष भी द्रौपदी के चीरहरण करने का पापपूर्ण प्रयास किया गया। मध्य युग में पति की मृत्यु के पश्चात हजारों स्त्रियों को इच्छा-विरुद्ध पति के शव के साथ जला दिया गया। जबकि आज तक किसी पुरुष ने पत्नी की मृत्यु के पश्चात जलने को सोचा तक नहीं।

धर्म के क्षेत्र में भी स्त्री-पुरुष असमानता स्पष्ट है। मध्य युग में शास्त्र के पठन-पाठन से भी स्त्रियां वंचित थीं। ईसाई धर्म में आज तक जितने पोप हुए, उनमें एक भी स्त्री नहीं है। जैन-धर्म के 24वें तीर्थंकरों में केवल 19वीं तीर्थंकर को छोड़कर सभी पुरुष वर्ग से ही हैं। राजनीति में भी पुरुषों का ही बोलबाला रहा है। भारत में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रस्ताव संसद के अधर में लटका हुआ है। भ्रूण हत्या के दुर्दांत क्षेत्र में स्त्री भ्रूण हत्या लगभग शत-प्रतिशत है।

संक्षेप में कहें तो मार्क्स के अनुसार मानवता का प्रथम शोषण जो पुरुष द्वारा स्त्री के शोषण से शुरू हुआ था, वह आज तक कायम है। इसलिए पितृसत्तात्मक समाज के बदले मातृसत्तात्मक समाज का अवतरण नई विश्व व्यवस्था के लिए अत्यंत अनिवार्य है। मातृ-शक्ति न केवल प्रजनन बल्कि सृजन, सहानुभूति, प्रेम और दया की शक्ति है। जिसकी प्रधानता से हिंसक समाज भी अपनी बर्बरता और निःसंसता को छोड़ सकता है।

आज राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विश्व व्यवस्था शोषण और विषमता पर टिकी हुई है जो संरचनात्मक हिंसा की जननी है। हिंसा के आधार पर न तो हम नया समाज बना सकते हैं और न तो हम नई राजनीति का स्वप्न देख सकते हैं। हिंसा को कालबाह्य मानकर शांतिमय विश्व का विकल्प ढूंढना होगा। अणु बम या अहिंसा और युद्ध या मानवता में से किसी एक को ही चुनना होगा। हमें याद रखना होगा कि विज्ञान के बिना अध्यात्म पंगु है। एक हाथ में विज्ञान की शक्ति और उसके साथ दूसरी अध्यात्म की दृष्टि नहीं होगी तो वैश्वीकरण या नई सभ्यता एक दिवास्वप्न ही बनी रहेगी। ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1600